



कूड़ा-करकट को सोने में बदला

कल्पना शर्मा

1948 में एक अठारह साल का लड़का तमिलनाडू के दक्षिण अर्काट जिले से बम्बई शहर आया था। उसे शहर या शहरी जीवन के बारे में ज्यादा जानकारी न थी। लेकिन वह बड़ी बहादुरी से चला आया था क्योंकि उसके लिए अपने सूखाग्रस्त गाँव में जिन्दा रहना मुश्किल हो गया था।

शाम्सुद्दीन ने सोचा था कि वह एक बड़े शहर में आ रहा था लेकिन उसने अपने-आप को उस दलदल में पाया जिसे धारावी कहते हैं। उसके मामू शेखर हुसैन यहाँ रहते थे। वे इस दलदल में 1914 से रह रहे थे। शाम्सुद्दीन ने बताया कि उसे मामू के यहाँ नौकरी मिल गई। मामू चावल की तस्करी करते थे। उन दिनों बम्बई शहर की सीमा माहिम पर खत्म हो जाती थी। माहिम के पश्चिम में ही मामू और उनके बेटे रहते थे। शहर के बाहर से आने वाले अनाज पर कर अदा करना पड़ता था। लेकिन हुसैन, उसके बेटों और भाजे ने व्यवस्था से बचने का तरीका ढूँढ़ लिया था।

हर रोज मैं और मेरे ममेरे भाई बम्बई के बाहर स्थित कई दफा विरार जाते और एक रुपए चौदह आने की प्रति

पौंड दर से चावल खरीद कर लाते। इसे हम अपने निजी सामान के रूप में लाते। माहिम स्टेशन से हम इसे लेकर खाड़ी (दलदल) से पैदल कल्याणवाडी मामू के घर जाते। इस चावल को दस रुपए प्रति पौंड के हिसाब से बेचा जाता था।

शाम्सुद्दीन के मामू 1954-55 तक धारावी में रहे और फिर अपने गाँव चले गए। उनके बेटे पाकिस्तान चले गए। इस तरह चावल का व्यापार बन्द हो गया। शाम्सुद्दीन के पास न पैसे थे न काम था। उसे एक स्थानीय कोयला कम्पनी में नौकरी मिल गई। उसे एक दिन में सिर्फ 1.50 रुपए वेतन मिलता। दो साल बाद उसे मदनपुरा में 56 रुपए प्रति माह पर एक मुद्रण प्रेस में काम मिल गया। 1959 में उसने तमिलनाडू के तांबरम की हयातबी से शादी कर ली। बेशक उसकी पत्नी कभी स्कूल नहीं गई पर वह खुद तमिल में छठीं क्लास तक पढ़ा था।

बान्द्रा में उनके ही गाँव का एक आदमी एक गैर-कानूनी झोपड़ी में रहता था। दोनों वहाँ रहने लगे। शाम्सुद्दीन की कमाई पर वे जैसे-तैसे गुज़ारा करते। कुछ समय बाद वे धारावी

स्थित कल्याणवाड़ी में रहने लगे। यहाँ शम्सुद्दीन के मामा रहते थे। बेशक वहाँ तमिलनाडू के लगभग तीस थेरवर परिवार रहते थे। सिर्फ शम्सुद्दीन का परिवार ही मुसलमान था। शम्सुद्दीन ने बताया कि कभी कोई समस्या नहीं हुई।

1961 में शम्सुद्दीन कुट्टीवाड़ी में एक स्थापित चॉल में रहने लगा। 10 फुट × 18 फुट के कमरे का किराया 475 रुपए था। वह बताता है कि उन दिनों वहाँ काफी पानी उपलब्ध था। नगर निगम साफ सफाई रखता था। ढोर डंगर के लिए पानी का इंतजाम अलग से था। इस चाल का नाम केरल के हसनकट्टी की याद में था। हसनकट्टी ने ही 1887 में बड़ी मस्जिद बनवाई थी।

शम्सुद्दीन ने बताया कि हामिद नाम का एक आदमी चिकी बनाना जानता था। वह मेरे पास आया और बोला मुझे जगह दिलवा दो, मैं चिकी बनाऊँगा, हमने उसे एक झोंपड़ा दिलवा दिया। उसका बनाया मैसूर पाक और चिकी बेचने मैं जाने लगा। मुझे हर रोज़ 25 रुपए कमाई हो जाती थी। मैंने प्रेस की नौकरी छोड़ दी।

वक्त गुजरने के साथ-साथ शम्सुद्दीन और उसकी पत्नी ने चिकी बनाना सीख लिया। जब हामिद कलकत्ता लौट गया तो इन दोनों ने इस काम को संभाल लिया। पूरा दिन वह चिकी बनाते, उसे पुराने अखबारों में लपेटते और शाम को शम्सुद्दीन इसे सिनेमाघरों की कैन्टीनों में ले जाता। चिकी बेच कर वह रात ग्यारह बजे घर लौटता।

उसने अपनी चिकी का नाम ए-1 चाइल्ड रखा। कलकत्ता में इसी नाम से एक च्युइंग गम मिलती है। 1992-93 में हुए दंगों तक शम्सुद्दीन का काम फल-फूल रहा था। दंगों के दौरान सारे कारीगर शहर छोड़ गए। शम्सुद्दीन ने बताया 'तब इस काम से मेरा मन हट गया। मैंने एक ऐसे लड़के को अपना काम सौंप दिया जो मेरे लिए काम करता था। वह अपने लाभ का एक हिस्सा मुझे देता है।'

धारावी क्रॉस रोड़ पर स्थित कुट्टीवाड़ी में अबू बकर चॉल में ए-1 चिकी फैक्टरी आज भी है। यहाँ दो कमरे और

एक अटारी है। इन दो अधेरे कमरों में बीस कारीगर काम करते हैं। वह सब तिरुनेलवेली के हैं और ज्यादातर तमिल बोलते हैं। वह ऊपर अटारी में सोते हैं। एक कमरे में चिकी बनती है, दूसरे में मसाला दाल तली जाती है। मैसूर पाक बनाने के लिए रोड़ बाजार से ईंधन के लिए बुरादा लाया जाता है। बुरादे के कारण उठने वाले धुएं से दोनों कमरे काले हो गए हैं।

शम्सुद्दीन अब धारावी की एक बहुमंजिली बिल्डिंग नागरी अपार्टमेन्ट्स में रहता है। उसकी बैठक में टाइलें लगी हैं। वहाँ दो फोन हैं। एक लकड़ी की केबिनेट में टी.वी. सेट है। शीशे की एक कैबिनेट में कलाकृतियां सजी हैं और बहुत सी अन्य चीजें रखी हैं। यह सत्तर वर्षीय, अपनी सफेद कमीज, लुंगी और जालीदार सफेद टोपी में एकदम विशेष लगता है। वे तमिल लहजे से युक्त हिन्दी बोलते हैं। वे हज कर आए हैं। इसलिए उन्हें 'हाजी साहब' कह कर सम्बोधित किया जाता है – हाजी पी.एस. शम्सुद्दीन – उनके शिक्षित बेटे अपना अपना व्यापार करते हैं एक धारावी मुख्य मार्ग पर अपना मेडिकल स्टोर चलाता है।

शम्सुद्दीन की कहानी अनोखी नहीं है। धारावी में एक ही जीवन काल में चीथड़ों से समृद्ध सम्पत्र बने बहुत से लोग हैं। यह कैसे सम्भव हुआ? उनका अपना उद्यम या कठोर मेहनत? थोड़ी सी अच्छी किस्मत? या फिर जीवित रहने की मजबूरी, एक सुरक्षा कवच की कमी? क्या येही वे तत्व हैं जो लोगों को असम्भव प्राप्त करने के लिए मजबूर करते हैं?

उद्यम और प्रवीणता

धारावी निवासियों की जिन्दगी में हाजी शम्सुद्दीन की जीवन गाथा कई -कई बार दोहराई जाती है। यह कहानी प्रवीणता और उद्यम की है। यह कहानी बिना आर्थिक मदद या कल्याण योजनाओं के जिन्दा रहने की है; यह कहानी है जो समझाती है कि जिस जगह पर सूटकेस,

चमड़े का सामान, भारतीय मिठाईयाँ, पापड़ और सोने के गहने जैसी चीजें बनाते हों उसके लिए 'झुग्गी-झोपड़ी' शब्द कितना सीमित है!

धारावी में एक- एक वर्ग इंच किसी न किसी उत्पादन के लिए काम में लाया जा रहा है। यह उद्यम का एक साकार आदर्श है। धारावी आजाद उद्यम का एक द्वीप है। कोई सरकारी तन्त्र, कोई कानून न तो इसे कोई मदद दे रहा है और न कोई कानून इस पर कोई पार्बद्धियां लगा रहा है। यह अपनी गैर-कानूनी स्थिति को खूब भांजता है। वहाँ सब कुछ होता है - बाल श्रमिक, खतरनाक उद्योग, मिलावट, पुनः तैयार सामान, बहुत किस्म के पेयजल से लेकर धारावी में ही बनाए गए दन्तमंजन व पेस्ट - यह सब वहाँ मिलता है। यहाँ कुछ भी छिपा कर नहीं होता। क्योंकि लोग जानते हैं कि उन्हें पकड़ने कोई नहीं आएगा। गैर-कानूनी कामों को कानून की ही बन्द नज़रों में पूरा समर्थन उपलब्ध है।

बेशक छुट्टी का ही दिन क्यों न हो धारावी में ऐसा लगता है कि आप पाँव- चक्की पर दोड़ लगा रहे हैं। धारावी में छुट्टी के भी दिन कोई इधर- उधर घूमता नजर नहीं आता। सड़कों पर लोग दुकान लगाए बैठे मिलेंगे। सेफ्टी पिन, फलों के अलावा सूटकेस तक बेचे जाते हैं। इनके पीछे तरह- तरह की दुकानें हैं - सत्कार ज्वेलर्स, राशन की दुकान, भूपेंद्र स्टील, हुसैन होटल, स्वस्तिक बिजली और लोहे की दुकान, श्रीनाथ ज्वेलर्स और मुंबई पोली क्लीनिक - 90 फुट मार्ग पर यह सब कुछ बिकता है। हिन्दू, मुसलमान, दक्षिण, उत्तर, खाने- पीने का सामान, गहने, लोहे का सामान, डॉक्टर, सब कुछ एक ही सड़क पर है।

अगर आप शहर में सबसे बढ़िया गुलाब जामुन खाना चाहते हैं आप सबसे उत्तम चिकी खरीदना चाहते हैं, आप चमड़े का आयतित गुणवत्ता वाला हैन्ड बैग या विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा अनुमोदि शल्य चिकित्सा के लिए सूचर ढूंढ रहे हैं, निर्यात के लिए तैयार किए जा रहे नए से नए नमूनों के कपड़े देखना चाहते हैं, नया सूटकेस खरीदना है या फिर

पुराने की मरम्मत करवानी है, उत्तर या दक्षिण का खाना चखना चाहते हैं, दक्षिण भारत के पारम्परिक सोने के गहने देखना चाहते हैं - धारावी के अलावा पूरे मुंबई में दूसरी जगह नहीं है। धारावी के बाहर इधर-उधर फैली सड़कों पर बनी दुकानों में भी यह सब कुछ बिकता है। लेकिन अगर आपको रास्ता दिखाने वाला कोई धारावी निवासी आपके साथ है तो आपको और भी बहुत कुछ मिल जाएगा।

धारावी में हर रोज कितनी कमाई होती है? इसकी जानकारी पाना सम्भव नहीं है। धारावी में ऐसे बहुत कम लोग मिलेंगे जो अपनी कमाई की सही जानकारी देने को तैयार हो जाएंगे। उन्हें हमेशा डर लगा रहेगा कि कोई अधिकारी उन्हें पकड़ न ले। यहाँ हो रहे ज्यादातर काम गैर-कानूनी हैं। बेशक इसमें कोई शक नहीं कि यहाँ हो रहा व्यापार करोड़ों में जाता है। धारावी निवासियों के मुताबिक मोटे तौर पर कहा जा सकता है कि एक साल में 1,500 करोड़ रुपए से 2,000 करोड़ रुपए तक या फिर एक दिन में 5 करोड़ रुपए की कमाई होती है। ऐसा भी अनुमान है कि यहाँ लगभग 11 करोड़ रुपए प्रति हेक्टर प्रति वर्ष कमाई होती है। इसलिए कोई हैरानी की बात नहीं है कि लोग मानते हैं कि धारावी एक सोने की खान है। बेशक, इस अनुमान में जमीन की कीमत की गिनती नहीं की गई है।

1986 में राष्ट्रीय झुग्गी झोपड़ी निवासी संघ ने धारावी का एक सर्वेक्षण किया था। जब हम धारावी की गलियों से गुजरते हैं तो जो हम देखते हैं उसकी पुष्टि संघ की रिपोर्ट से हो जाती है। उस समय वहाँ 1,044 छोटी- बड़ी, तरह- तरह की निर्माण इकाईयां थीं। बाद में एक सर्वेक्षण मानव और पर्यावरण विकास सोसाइटी ने किया था। उसके मुताबिक वहाँ 1700 इकाईयां थीं। बहुत से लोग घरों और अटारियों से दूर कहीं और काम करते हैं। ये छोटी- छोटी इकाईयां इस सर्वेक्षण की निगाह से छूट गईं। इस तरह यह संख्या 1700 से ज्यादा है।

सर्वेक्षण द्वारा किए गए सर्वेक्षण का अनुमान था कि यहाँ 244 लघु मान इकाईयाँ हैं जिनके पास पाँच से दस लोग काम करते हैं। सर्वेक्षण में दर्ज बड़े-बड़े उद्योग बेशक मझोला उत्पादन इकाईयाँ ही हैं। इनमें दो कारखाने दर्ज हैं जो सूचर बनाते हैं- उनमें से एक बहुराष्ट्रीय कंपनी है- एक वह जिसे हम डुप्लिकेट कोलगेट नाम से जानते हैं। यानी एक वह टूथपेस्ट जिस पर किसी अंतर्राष्ट्रीय कंपनी का नाम अंकित है (धारावी की विशेषता है सब कुछ डुप्लिकेट) यहाँ साबुन बनाने की इकाईयाँ हैं, मिठाई की फैक्टरी है, कुछ चर्मशोधशालाएं भी हैं। बेशक कागजी रिकार्ड में सब चर्मशोधनशालाओं को धारावी से हटा कर 1980 के अन्त में देवनार भेज दिया गया था।

संघ ने अपने सर्वेक्षण में 152 ऐसी इकाईयों को दर्ज किया था जो चिकी, पापड़, चना, दाल जैसी खाने का सामान बनाती थी। संघ ने 111 रेस्तरां, 722 रही माल से नया सामान बनाने की इकाईयों के अलावा 85 निर्यात से जुड़ी इकाईयों और 25 बेकरियों को भी दर्ज किया था। यह इकाईयां पूरे धारावी क्षेत्र में फैली हैं। ट्रांजिट कॉम्प में भी काफी बड़ी संख्या में ये इकाईयाँ स्थापित हैं।

इन सब छोटी-बड़ी इकाईयों की स्थापना सरकारी मदद से नहीं बल्कि सरकार के बावजूद हुई है। इनमें से एक को सरकार से कुछ लाभ मिलते हैं। ज्यादातर लोग कानूनों और शर्तों का पालन नहीं करते हैं। यह स्थिति दोनों के लिए लाभकारी है। सरकार का पूरा सिरदर्द बच जाता है। उसे कोई निरीक्षण नहीं करना पड़ता। इतनी विविध प्रकार की इकाईयों के निरीक्षण और कर लगाने के झंझट से सरकार बची रहती है। इकाईयाँ सब कायदे कानून तोड़ कर खूब फलती-फूलती हैं। इकाईयों के मालिक कई झंझटों से बच जाते हैं। काम करने वालों को कोई सुविधा नहीं देनी पड़ती, उनकी सेहत का बीमा नहीं करवाना पड़ता है, पुराने कारीगरों को अक्सर निकाल कर नए

कारीगरों को कम तनख्बाह पर रख लिया जाता है। स्थिति पर किसी को भी कोई एतराज नहीं होता है। इस स्थिति से हर किसी का कोई न कोई लाभ होता है।

धारावी में इतनी ज्यादा किस्म के उद्योग हैं कि उन सब की जानकारी पाना असम्भव है। फिर भी इतना तो मालूम है कि यहाँ दो तरह का व्यापार चलता है। एक पुराने वर्कों से चला आ रहा काम और दूसरा आधुनिक उद्यम। आधुनिक उद्यम में जो शामिल हैं वह है चमड़े का उद्योग जिसमें चमड़े की अनेक चीजें बनाई जाती हैं जिसमें सूचर और बकल शामिल हैं (1) इस श्रेणी में कपड़े भी आते हैं जिन्हें स्थानीय बाजार में बेचा जाता है। खाने-पीने के सामान में मिठाईयाँ, पापड़ और बेकिंग उत्पाद शामिल हैं। धारावी में अनेक खतरनाक उद्योग हैं। इनमें शामिल हैं रही माल से नया सामान बनाना, संधान शाला में बनते पीतल के बकल। पारम्परिक उद्योगों में मुख्य है कुम्हार, सुनार और सोने को परिष्कृत करने वालों के काम।

चमड़े का व्यापार

सरकारी स्तर पर सारी चर्मशोधन शालाओं को धारावी से देवनार में भेज दिया गया है। पहले आप जैसे ही धारावी में कदम रखते थे आपको वहाँ चल रहे चमड़े के कारखानों से उठती बदबू को झेलना पड़ता था। आप किसी से भी पूछ लीजिए-1950 और 1960 के दशकों का धारावी कैसा था? उत्तर मिलेगा -बेहद बदबूदार। ऐसे भी अनेक हिस्से थे जहाँ चमड़ों से निकलने वाले के ढेर पड़े रहते थे। आज भी धारावी में ऐसी सड़कें हैं जिनकी गलियों-नालियों में भेड़-बकरियों के बालों के अम्बार धूप में सुखाए जा रहे हैं। एक हल्का-सा हवा का झोंका आते ही वे छतों और गलियों में उड़कर फैल जाते हैं।

39 में से 27 चर्मशोधन शालाओं को धारावी से हटाकर देवनार में जमीन दी गई थी। सरकारी प्रतिबंधों के बावजूद बहुत सी छोटी इकाईयाँ धारावी में ही सक्रिय हैं। तमिल बाहुल्य वाले पलवाड़ी से एक बार गुजर जाइए

वहाँ कुछ शोड नजर आ जाएंगे। एक छोर पर बहुराष्ट्रीय कम्पनी में काम कर चुके एक आदमी ने साबुन की फैक्टरी लगा रखी है। उसके द्वारा बनाए साबुन की शक्लो-सूरत ठीक वैसी ही है जैसी उस बहुराष्ट्रीय कम्पनी की होती है। उस शोड में एक लकड़ी का ड्रम है जो उस बहुत भारी- भरकम पशु की तरह कराहता रहता है जिसे यह नहीं पता कि कब चुप हो जाना है। इस शोड में बीसियों चमड़े रसायन में भिगोकर धोये और साफ किये जाते हैं। यह चमड़े को तैयार करने की आखिरी कार्यवाही होती है।

पहले यहाँ काम करने वाले रहते भी यहीं थे। यह काम बेहद गंदा होता है। इसमें निचली जाति के ही आदमी काम करते हैं। बूचड़खाने से रात के समय चमड़े लाये जाते हैं। उनको पहले धोया जाता है क्योंकि वह खून से लथपथ होते हैं। फिर उन पर नमक लगा कर चार घंटे के लिए रख दिया जाता है। फिर दोबारा नमक लगाया जाता है। इसके बाद इन चमड़ों को दूसरे चर्मशोधक के पास भेज दिया जाता है।

कुछ ऐसे भी स्थान हैं जहाँ चमड़ों को और भी संसाधित किया जाता है। इनको चूने से भरे गड्ढों या ड्रमों में चार दिन तक डुबोकर रखा जाता था। इस तरह चमड़ा उन रसायनों को सोख लेता है जो इन पर बाद में लगाए जाते हैं। इसके बाद चमड़े के बाल उतारे जाते हैं - पहले यह काम हाथ से होता था और अब मशीनों से किया जाता है - अन्ततः ऊन, बच्चा हुआ माँस और चर्बी निकाली जाती है।

चूना निकालने के लिए चमड़ों को अमोनियम क्लोराइड में डुबा दिया जाता है। इस तरह चमड़ा तैयार हो जाता है और अगर कहीं बाल रह गए हैं तो वे भी उतर जाते हैं। प्रक्रिया के बाद चमड़ा सफेद रंग का हो जाता है।

इसके बाद चमड़े को क्रोमियम सल्फेट में आठ घंटे तक रखा जाता है। एक दिन के बाद इसे नरम करने के लिए चमड़े पर औषध जल (फैट लिजेउर) लगाया जाता है। इसके

बाद ही चमड़े को सूखने दिया जाता है। आखिरी प्रक्रिया में इसे रंगा जाता है।

अब ज्यादातर चर्मशोधन शालाएं धारावी से चली गई हैं। यहाँ अब सिर्फ शुरू-शुरू के काम होते हैं। उसके बाद चमड़े अन्तिम कार्यवाही के लिए चेन्नई भेज दिये जाते हैं। वहाँ से संसाधित होने के बाद चमड़े धारावी आते हैं। यहीं पर उत्पाद बनाने में इनका इस्तेमाल होता है।

चमड़े को तैयार करने की पहली प्रक्रिया सबसे कठिन होती है। धारावी मुख्य मार्ग से आप कुट्टीवाड़ी आइए। वहीं आपको इनायतभाई का गोदाम नजर आएगा। यहाँ चमड़ों को सोडियम सल्फाइड से तैयार किया जाता है। यहाँ से आरही गन्ध आप सह नहीं पाएँगे। बेशक गुजरते वक्त के साथ-साथ आदत पड़ जाती है। साफ जाहिर है कि वक्त गुजरने के साथ-साथ इनायत भाई को कोई तकलीफ नहीं है। उनके कारिंदे चमड़ियों पर नमक लगाते हैं और इनायत भाई उन पर नजर रखते हैं।

‘एकलाख’ के अनुसार हर सप्ताह (हर मंगलवार और शनिवार) देवनार में 40,000 बकरियाँ मारी जाती हैं। इनको गुजरात और मध्य प्रदेश से मुंबई लाया जाता है। मारी गई बकरियों की यह सरकारी संख्या है। बिना सरकार की जानकारी के 5,000 और बकरियाँ मारी जाती हैं। सबकी सब चमड़ियाँ धारावी लाई जाती हैं। एक चमड़ी को सौ रुपये में खरीदा जाता है। नमक लगाने के बाद इन्हें थोड़े ज्यादा पैसों में बेचा जाता है। ‘एकलाख’ के अनुसार लाभांश बहुत कम है। बकरियों के अलावा 500 भैसे और 200 गायें हर सप्ताह मारी जाती हैं। इनका चमड़ा 500 रुपए प्रति पशु के हिसाब से बिकता है।

चमड़े के इस व्यापार में काम करनेवाले या तो उत्तर प्रदेश के मुसलमान हैं या तिरुनेलवैली जिले के मुसलमान और हिन्दू हैं। बाहरी आदमी सिर्फ एक ही है और वह है 67 वर्ष का ऐनक पहने बहुत मृदुभाषी पारसी दराब पेडर। वे अंग्रेजी से बेहतर हिन्दी जानते हैं। वे कहते हैं ‘यह

जीवन शैली मेरे पिता ने मुझे दी है। हमें उसी कश्ती में सफर करना है जिसमें हमारे पिता ने किया था। हम क्या करें?’ यह कहते- कहते उनकी आँखों में एक चमक आ जाती है।

पेडर परिवार का चमड़े से रिश्ता पहले विश्वयुद्ध से भी बहुत पहले जुड़ गया था। दराब पेडर के दादा जर्मनी की एक कम्पनी में काम करने एडेन गए थे। वे अफ्रीका से चमड़ा खरीदते, उसका शुरुआती उपचार करते और उन्हें जर्मनी भेज देते। वहाँ उनका चर्मशोधन और परिष्कार होता था।

1930 में पेडर के पिता भारत लौट आए। उन्हें धारावी में चर्मशोधक के पास नौकरी मिल गई। 1957 में वे सेवानिवृत्ति हो गए और एक साल बाद उनका देहान्त हो गया। सेवानिवृत्ति के बाद उन्होंने अपना काम शुरू कर दिया था। उनकी अकाल मृत्यु के बाद दराब पेडर को अपनी पढ़ाई छोड़ कर अपने पिता का काम संभालना पड़ा था। 1978 तक पेडर ने भारत के सबसे बड़े चमड़ा व्यापारी नागपाणी चेट्टीचार के पास नौकरी की। इस चर्मशोधन इकाई में एक दिन में 50,000 चमड़े परिष्कृत होते। वे पूरे भारत के 200 केन्द्रों से सप्लाई होते। पेडर पश्चिमी क्षेत्र के चौदह ऐसे केन्द्रों का कामकाज देखता था।

1978 में दराब पेडर ने चेट्टीचार की नौकरी छोड़ दी। उसने अपनी कम्पनी वीरा टैरीज खोल ली। चूंकि धारावी या मुंबई में कोई जगह उपलब्ध न थी इसलिए उसने औरंगाबाद के एक औद्योगिक क्षेत्र में 65 एकड़ जमीन खरीद ली।

पेडर की धारावी इकाई में हर रोज 1,000 से 1,200 चमड़ों को नमक प्रक्रिया से तैयार करके औरंगाबाद भेज दिया जाता है।

पेडर का अनुमान है कि धारावी में एक साल में कच्चे चमड़े का व्यापार लगभग 60 करोड़ रुपयों से ज्यादा है। इसमें से 50 करोड़ रुपयों के चमड़े भेड़ों और बकरियों के और शेष भैंसों और गायों के होते हैं।

बेशक धारावी में अब चमड़ा शोधन का काम लगभग ठप्प हो गया है। अब वहाँ चमड़े से तैयार चीजें बिकने लगी हैं। जब आप 90 फीट मार्ग पहुंच कर सायन -माहिम सम्पर्क मार्ग की ओर मुड़ते हैं तो चमचमाते चमड़े के शोरूम नजर आते हैं। इन दुकानों के नाम कुछ इस तरह के हैं - जेज, लेदरक्राफ्ट, स्टेप-इन, आइडियल लेदर। शोरूम के बाहर लगे शीशों के पीछे उनके नए नमूनों के चमड़े के हैंड बैग, ब्रीफकेस और सूटकेस सजा- संवार कर रखे रहते हैं। अन्दर वातानुकूलित (एयरकंडिशन्ड) कमरों में बालेट, पेटिया, फोटो फ्रेम और किस्म-किस्म के चमड़े के उत्पाद रखे रहते हैं। इनमें से ज्यादातर सामान ऐसा होता है जो नियर्तिकों ने उठाने से अस्वीकार कर दिया होता है या फिर दिए गए आईर से ज्यादा बन गया होता है। यह सामान दक्षिण मुंबई में बिक रहे ऐसे ही सामान के मुकाबले आधी कीमत पर मिल जाता है। मोल-तोल सौदे बाजी चलती है। सब अपना सामान कम कीमत पर बेचने को तैयार मिलते हैं।

यह वही मशहूर धारावी सड़क है जिसके बारे के मुंबई के समृद्ध -सम्पन्न लोगों को भी जानकारी है। बेशक धारावी में तैयार चमड़ा उतना बढ़िया नहीं होता। अब ट्रकों में डालकर चमड़ा चेन्नई से आता है। ज्यादातर चर्मशोधन का काम वहाँ होने लगा है।

बेशक चमड़े से बना साजो सामान एयर-कंडिशन्ड दुकानों से बेचा जाता है। यह या और कोई भी सुविधा कारीगरों को नहीं मिलती है। वे अटारियों या वहाँ काम करने वाले बिना रोशनी, बिना रोशादान, बिना खिड़कियों के और दमघोटू गरमी में कमरों में रहते हैं। यहाँ से वह बेहद सुन्दर चमड़े का साजो-सामान बनाते हैं।

धारावी में चमड़े से चीजें बनानेवाली सबसे पुरानी वर्कशाप है सिद्धांत लेदर वर्क्स। यह इन दुकानों के पीछे गुमनामी में स्थित है। एक बहुत ही संकरे कमरे में बैठा मनीष माने इसे चलाता है। यह दुकान उसने अपने दादा

शंकर माने से विरासत में प्राप्त की है। शंकर माने 1933 में महाराष्ट्र की सीमा पर स्थित शोलापुर और सातारा जिलों से बम्बई आया था। अपने पिता की तरह शंकर ने गांव में चमड़े का काम किया था। तब सिर्फ एक इकाई थी जो चमड़े का सामान बनाती थी। उसे वहाँ आसानी से काम मिल गया। यह इकाई थी - यूनिवर्सल ट्रेडिंग कम्पनी। प्रिसेस रोड पर स्थित थी। शंकर यहाँ चमड़े के बैग बनाता था। उसे हर महीने 20 रुपए मिलते थे।

1942 में जब बम्बई में हिन्दू-मुसलमान दंगे हुए तो शंकर माने अपने गाँव लौट गया। वह शहर में शान्ति हो जाने के बाद 1946 में बम्बई लौट आया। सौभाग्यवश यूनिवर्सल ट्रेडिंग कम्पनी के मालिक ने उसकी मदद करने का फैसला किया। 1951 में शंकर माने ने धारावी की पारसी चॉल में 36 फुट × 12 फुट का एक कमरा 1,800 रुपयों में खरीद लिया। यहाँ माने ने सिद्धान्त लेदर वर्क्स स्थापित किया। मनीष और उसका 55 वर्षीय पिता शिवराम शंकर माने इसी कमरे से अपना व्यापार चलाते हैं।

लेकिन अब बहुत कुछ बदल गया है। इस क्षेत्र का नाम पारसी चाल इसलिए था क्योंकि इसका मालिक पारसी था। शुरू में यहाँ गाय, भैंसों और घोड़ों के लिए गोशाला और अस्तबल होते थे। अंग्रेजों के चले जाने के बाद इन्हें चाल में बदल दिया गया। एक कमरा, एक अटारी और टाइलें लगी छत वाली कोठरियां बना दी गईं। तब की बनी अनेक कोठरियां अभी भी हैं। शिवराम ने अपनी कोठरी में 1955 में मरम्मत करके सुधारा। नगर निगम द्वारा दी गई स्वीकृति अभी भी उसके पास है। नगर निगम ने कुछ अजीबो-गरीब शर्तें रखी थीं। इनमें से एक थी कि सब खिड़कियाँ सागवान लकड़ी से बनाई जाएं।

शिवराम के पूर्व मालिक ने उसे चमड़े की एक सिलाई मशीन भेट दी ताकि वह अपना काम शुरू कर सके। बाद में उसने आठ मशीनें खरीदी थीं। उस जमाने में एक मशीन की कीमत 150 रुपए से 200 रुपयों तक होती थी। आज

उसी मशीन की कीमत 36,000 से 80,000 रुपयों तक है।

शिवराम के पिता पढ़ाई छोड़ कर मुंबई आ गए थे। लेकिन शिवराम ने कक्षा ग्यारहवीं तक पढ़ाई की। उसके दो बेटे और दो बेटियां हैं। शिवराम ने सुनिश्चित किया कि वे पढ़ाई पूरी करेंगे।

जब शिवराम ने धारावी से बाहर काम शुरू किया तब सिर्फ दो और लोग यह काम कर रहे थे। आज धारावी में 25 से तीस लोग चमड़े का काम कर रहे हैं। 5,000 लोग इस काम में नौकरी कर रहे हैं। इन लोगों के पास एक या दो मशीनें हैं। उन्हें व्यापारियों से काम मिलता है। शिवराम का अनुमान है कि जिस क्षेत्र में वह रहता है वहाँ हर घर का एक या दो व्यक्ति इस काम जड़ा हुआ है।

छह लोग निचली मंजिल की वर्कशाप में गहने रखने के डिब्बे बनाते हैं। अटारी में तीन लड़के चमड़े के ब्रीफकेसों के हिस्से बनाते हैं। 17 वर्षीय आफताब बिहार के मधुबनी जिले से मुंबई में यह हिस्से बना रहा है। वह कहता है 'जब मैं मुंबई आया तो मैं एक रिश्तेदार के घर में रहता था। जैसे-तैसे मुझे काम मिल गया। तब मुझे समझ में आया कि पैसा कितनी जरूरी चीज़ है। मैंने फैसला किया कि मैं पढ़दूँ पूरी करने वापस बिहार नहीं जाऊंगा। धारावी में आफताब जैसे तेज और होनहार बहुत से लड़के हैं। हर विषय पर उसका अपना मत है। 'लालू गरीबों की परवाह करता है इसलिए वह लोकप्रिय है'। बिहार के पूर्व मुख्यमंत्री के बारे में आफताब का यह कहना है।

शिवराम ने बताया कि जब वह अपने पिता के साथ पारसी चॉल में रहने आया तब यह जगह एक दम दलदल थी। आज यहाँ दुकानें हैं। तब यहाँ काम करने वाले लोग महाराष्ट्र निवासी थे। वे चप्पल और जूते बनाते थे। उनमें से बड़ी संख्या में सातारा के थे। शिवराम ने बताया आज यहाँ यह काम करनेवालों में 60% मुसलमान हैं। ये लोग उत्तर प्रदेश और बिहार के हैं। चमड़ा व्यापार में काम करने वाले शिवराम जैसे

लोग महाराष्ट्रीयन हैं। बहुत कम लोग अब पारंपरिक जूते और चप्पल बनाते हैं। ऐसे लोगों को ढूँढ़ने के लिए गलियों के चक्कर लगाने पड़ते हैं।

ऐसा एक आदमी है दामोदर रामचंद्र कांबले। वह पारसी चॉल में जूते बनाता है। उसने 1982 में जयश्री लेदर आर्ट स्थापित की थी। वह ऐसे निर्यात के आर्डर लेता है जहाँ उसे सिर्फ जूतों का ऊपरी हिस्सा बनाना होता है। इन्हें एक फैक्टरी में भेज दिया जाता है। वहाँ नीचे का तल्ला लगाया जाता है। इन जूतों का ऑस्ट्रेलिया और जापान में निर्यात होता है।

कांबले का कहना है कि धारावी में यह काम करने वाला एक वही है। 20 फुट × 10 फुट के एक कमरे और एक अटारी में लगभग बीस कारीगर उसके साथ काम करते हैं। काम करने की जगह में अन्य ऐसे कमरों के मुकाबले रोशनी और हवा है। उसके कारीगर उत्तर प्रदेश और बिहार सहित पूरे देश से आते हैं।

कांबले पुणे जिला के नीना गाँव का है। उसने बताया कि उसके माता-पिता भी यही काम करते थे। वह बड़े गर्व से बताता है 'हमारी हालत अच्छी न थी। इसलिए हमें मुंबई आना पड़ा। मैंने पन्द्रह साल चमड़े की एक फैक्टरी में काम किया। मैंने अपना काम बिना किसी कारीगर के शुरू किया था। धीरे-धीरे मैंने कारीगर रखे। आज मेरे व्यापार का एक करोड़ का वारा-न्यारा है।'

बांद्रा में कसाई घर से नजदीकी ने एक और व्यापार को जन्म दिया - और वह था सूचर बनाने का काम। बहुराष्ट्रीय कम्पनी जॉन्सन अँड जॉन्सन की धारावी में फैक्टरी है। इस कम्पनी के अलावा सूचर बनाने वाली आइडिअल ट्रेडिंग कम्पनी का मालिक अब्दुल बाकुआ बहुत मशहूर है। इस कम्पनी को डब्लू एच ओ (विश्व स्वाथ्य संगठन) की मान्यता प्राप्त है। वह बड़े गर्व से बताता है कि बावजूद धारावी में फैले गन्द के उसकी फैक्टरी में साफ सफाई का स्तर बहुत ऊँचा है। यहाँ बने सूचर सिर्फ निर्यात होते हैं।

धारावी में अनेक सफल कहानियों में एक बाकुआ की कहानी है। इसका अक्सर जिक्र आता है। 1948 में वह तेरह साल की उम्र में आजमगढ़ जिले से मुंबई आया था। धारावी में वह किसी को नहीं जानता था। जब वह दो साल का था तो उसके पिता का देहान्त हो गया था। माँ ने दूसरी शादी कर ली थी। लेकिन उनकी माली हालत बेहद खराब थी।

बाकुआ पुरानी बातें याद करते हुए बताता है, 'मैंने सुना था कि धारावी में आजमगढ़ के कुछ लोग हैं। मैं यहाँ आ गया। मैं बड़ी मस्जिद की दरगाह में सोता था। दिन में सड़क पार रफीक यूपी रेस्टरां में सफाई करता था। मेरी तनख्वाह 15 रुपए प्रति माह थी। मैंने वहाँ चार साल, 1952 तक काम किया। पर कुछ बचत नहीं कर पाया। उन दिनों धारावी की खस्ता हालत थी। हमें माहिम स्टेशन से दलदल में से गुजर कर यहाँ आना होता था।'

1952 में तंग आ कर बाकुआ आजमगढ़ लौट गया। वहाँ उसने राशन की दुकान खोली। दस साल तक दुकान चलाने के बावजूद कुछ बात बनी नहीं। वह अपने परिवार के बगैर बम्बई आ गया। कोई काम शुरू करने के लिए उसके पास धन न था। एक दोस्त कोयम्बटूर में सूचर बनाता था। उसने बाकुआ को कोयम्बटूर साथ चलने को कहा। कुछ समय के बाद बाकुआ ने अपना काम शुरू कर दिया। उसने सूचर बनाना सीख लिया था। वह उन्हें जॉन्सन एंड जॉन्सन जैसी बड़ी कम्पनियों को बेचने लगा। उसके सूचर निर्यात भी होने लगे थे। तीन साल के अन्दर उसने इतना धन कमा लिया था कि कोयम्बटूर में एक मकान खरीद लिया। वह एक इतालवी कम्पनी को भी सूचर सप्लाई करता था। उस कम्पनी का मालिक एक इतालवी यहूदी था जो बम्बई में रहता था। उसने बाकुआ को बम्बई बुला लिया। वे साझेदार बन गए और कुछ वर्षों तक वह सूचर निर्यात करते रहे। 1970 में इस इतालवी ने बताया कि वह इटली लौटना चाहता है। यह भी कि वह इस व्यापार को

जारी नहीं रखना चाहता है। 1970 में बाकुआ ने उसका काम संभाल लिया। धारावी में उसने एक फैक्टरी खोल ली। उसे ट्रेडिंग कम्पनी नाम से पंजीकृत करवा दिया।

बाकुआ के सूचर पूरे चमड़ा व्यापार को समो लेते हैं। - चमड़ियां, तैयार सामान, सूचर - धारावी में इन सब के लिए जगह है। कारण इतना- सा है कि बूचड़खाना बान्द्रा में है और धारावी में आए अनेक बदलावों के बावजूद चमड़े का व्यापार सबसे ज्यादा मुख्य है और धारावी का इससे पक्का रिश्ता है।

कपड़ा उद्योग

धारावी क्रास रोड से जरा दूर एक कीचड़ भरी सड़क कुट्टीवाड़ी की ओर ले जाती है। एक ओर धारावी की पुरानी बेकरीज हैं तो दूसरी ओर ढेर सारे गोदाम। सबसे पहले वाले में पुराने तरीकों से काम करने वाली चमड़े की इकाईयाँ हैं। धारावी की अनेक गलियों में ऐसी इकाईयाँ हैं। इनकी जानकारी मिलती है खुले दरवाजों से बाहर आती बदबू से।

अगले गोदाम में कपड़ों की फैक्टरी है। वहाँ तीन लम्बे-लम्बे मेज हैं जिन पर उस्ताद सिलाई के लिए कपड़े काटते हैं। कागज पर नमूने दिवारों पर चिपकाए हुए हैं। एक तरफ कपड़ों के थान रखे हैं। कमरे के आखिरी कोने में कुरता पैजामा, सफेद सैन्डल, ऐनक पहने युवक, मुस्तकीम एक छोटे- से एयरकंडीशन्ड कमरे में बैठा है। बगल में एक कैबिन में कम्प्यूटर रखा है। इसी से वह अमरीकी बाजारों से सम्पर्क साधता है। उसके मेज पर फोन और फैक्स मशीन रखी है। एक ओर तैयार हो चुकी पोशाकों के नमूने रखे हैं। मुस्तकीम इनपोशाकों का नियंत्रित अमरीका में वॉल-मार्ट और के मार्ट के माध्यम से करता है।

1970 में जब मुस्तकीम बम्बई आया था तब वह तेरह साल का था। उसने कभी सपने में भी न सोचा था कि एक दिन वह कपड़ों की फैक्टरी का मालिक बन जाएगा। यह भी कि वह अमरीका के लिए कपड़ों का नियंत्रित करेगा। उसका परिवार उत्तरप्रदेश स्थित रायबरेली जिला के जर्मांदार थे।

यह क्षेत्र नेहरू-गांधी परिवार का चुनाव क्षेत्र रहा है। वक्त गुजरता गया और मुस्तकीम का परिवार गरीब होता गया। मुस्तकीम को मजबूरन रायबरेली छोड़ना पड़ा था। बेशक उसने अभी अपनी पढ़ाई पूरी नहीं की थी। वह काम ढूँढ़ने बम्बई आ गया।

इस बड़े शहर में उसका पहला घर बदनाम कामाठी पुरा क्षेत्र में था। यह क्षेत्र रेड लाइट क्षेत्र के नाम से बदनाम था। वह वहाँ एक रिश्तेदार के घर में ठहरा था। मुस्तकीम ने एक फैक्टरी में बिना वेतन काम सीखने के एवज में नौकरी की। वहाँ सिले- सिलाए कपड़े तैयार होते थे। हर सुबह वह वहाँ साढ़े सात बजे पहुंच कर सफाई करता, मशीनों को धोता, कारीगरों को चाय पिलाता और सबके काम खत्म कर लौट जाने के बाद मशीन पर कुछ सिलाई करता। सब कारीगर उत्तर प्रदेश के थे। उनके रहने का कोई ठिकाना न था। वे फैक्टरी के बाहर सड़क पर सोते थे। चार महीनों के अन्दर उसने पैरों से चलने वाली मशीन पर कपड़े सीना सीख लिया था। वह एक अच्छा दर्जी बन गया था। 'मेरा आदर्श बाब्य था - अगर मैं मेहनत से काम करूंगा तो भगवान मुझे सम्मानित करेंगे। मैं कारीगरों से कहता था कि एक दिन मैं भी फैक्टरी मालिक बनूंगा।'

1974 में मुस्तकीम ने धारावी निवासी अपने एक रिश्तेदार के घर में दो मशीनों पर काम शुरू कर दिया था। उसने एक मददगार रखा लिया था। दोनों जैसे - तैयार काम मुहैया करवा कर दिन भर मेहनत करते। उनका खर्चा कमाई से ज्यादा ही होता। पहले वह कपड़ा फैक्टरी में निश्चित वेतन पर काम करता था। तब वह घर पैसे भेज सकता था। अपना काम शुरू करने के बाद वह ऐसा नहीं कर पाया।

धीरे-धीरे दस मशीनों पर काम होने लगा। बगल में ही उसने कमरे किराए पर ले लिए। उसके कारीगर उन्हीं कमरों में रहते थे। फिर उसने अपने दो भाइयों को भी वहाँ बुला लिया। तीसरा भाई घर पर जमीन की देखभाल करता। बेशक

आज मुस्तकीम कुट्टीवाड़ी के एक शेड से काम करता है पर वह समृद्ध सम्पन्न हो चुका है। बेशक कुट्टीवाड़ी में बारिश हो जाए तो इस शेड तक आना- जाना बहुत मुश्किल हो जाता है।

बेशक धारावी में दो- चार ही कपड़ा निर्यातक हैं। वहाँ दर्जनों ऐसे लोग हैं और निर्यातकों से काम का आर्डर लेते हैं। 1992-93 के दंगों के दौरान चमड़ा बाजार और 'बगीचा' क्षेत्र पूरी तरह तबाह हो गया था। दोबारा निर्मित इन दोनों जगहों के हर एक कोने में दर्जनों ऐसे कारीगर काम करते हैं। बेशक धारावी में ज्यादातर कपड़ा निर्माता स्थानीय बाजारों में ही सामान बेचते हैं।

इनमें हाजी अब्दुल हक अंसारी जैसे लोग हैं। दंगों के दौरान अंसारी की मजगाँव स्थित फैक्टरी को आग लगा दी गई थी। तब उसके हाथ तोड़ दिए गए थे और उसे जेल भी जाना पड़ा था। उनकी आँखों, उनके शरीर के अंग-अंग से उदासी झलकती है, कड़वापन भी उनका पीछा नहीं छोड़ता है।

धारावी की 90 फीट रोड में बहुत से नगर हैं। उनमें से एक है इन्दिरा कुरैशी नगर। वहाँ अंसारी की वर्कशाप है। एक संकरी गली से जब आप अन्दर जाते हैं तो आप भारत के किसी दूसरे ही हिस्से में पहुँच जाते हैं। यह उत्तरप्रदेश का एक हिस्सा नहीं है। यह तो राज्य का एक विशेष जिला गोंडा है। अंसारी की तरह इन्दिरा कुरैशी नगर के ज्यादातर निवासी गोंडा के ही हैं।

इन सबके बीच है बारह साल का जमील। वह वहाँ जरदोजी, बेलबूटे काढ़ने का काम करता है। वह वर्कशाप में बारह घण्टे काम करता है। वहाँ रहता-सोता है। उसे इस गन्दीमें रहने, अपना घर छोड़ने का कोई अफसोस नहीं है। बड़ा होकर वह क्या करेगा? पूछने पर जमील कहता है शायद मैं फैक्टरी मालिक बन जाऊँ। कितने लोगों ने यह लक्ष्य हासिल कर लिया है। जमील के लिए भी यह सिर्फ न पूरा होने वाला सपना नहीं है।

जमील का मालिक अंसारी उत्तर प्रदेश से 1965 में मुंबई आया था। वह सिलाई के छोटे-मोटे काम करता था। अब उसके पास बहुत सी मशीनें और कारीगर हैं उसे निर्यातकों से आर्डर मिलते हैं। वह अपने- आपको एक छोटा कामगार बताते हुए जानकारी देता है कि वह एक साल में सात लाख रुपए बना लेता है। बड़े व्यापारी इससे दुगना कमा लेते हैं। अंसारी के अलावा शालीमार सोसाइटी में गोंडा के 70 और लोग रहते हैं। यह सोसाइटी गोंडा से आए लोगों ने दंगों के बाद बनाई थी। इस तरह वह एक दूसरे की मदद कर सकते हैं। इनमें से आधे बड़े व्यापारी हैं। अंसारी एक दिन में 500 से 600 कमीजें तैयार करता है। कारीगरों को एक- एक कमीज के हिसाब से अदायगी होती है। वह एक दिन में 150 रुपए तक कमा लेते हैं। इनमें से ज्यादातर बिहार के हैं। कुछ एक तमिलनाडू के हैं। अंसारी बताता है कि धारावी में कम से कम 500 लोग काम मिलने पर करते हैं और 100 लोग जरदोजी और मशीन पर कढ़ाई करते हैं।

जरदोजी बहुत ही कारीगरी का काम है। इसे आम तौर पर बंगाल और बिहार के कम उम्र के जवान बच्चे ही करते हैं। वह जमीन पर बैठ कर एक रैक पर फैले कपड़े पर सोने और चांदी के धागों से बहुत ही जटिल कढ़ाई करते हैं। यह बहुत ही मुश्किल काम है जिसे वे बेहद खराब रोशनी में करते हैं। बाकी कारीगरों की तरह यह भी इसी जगह खाते, सोते रहते हैं।

ऐसे भी बहुत से कारीगर हैं जो मशीन पर कढ़ाई करते हैं। ये आम तौर पर बंगाल से आते हैं। मशीनों की लगातार आ रही आवाज से ही आप कोई वर्कशाप ढूँढ़ सकते हैं। मशीन पर कढ़ाई का काम आम तौर पर स्थानीय बाजार के लिए ही किया जाता है।

धारावी के कपड़ा व्यापार पर निर्यात व्यापार में आने वाले बदलावों का कोई असर नहीं पड़ता है। यह काम तो स्थानीय बाजार के लिए किया जाता है। इसका प्रमाण

आपको सोशल नगर की किसी एक गली में मिल जाएगा। वहाँ लगभग एक दर्जन ऐसी दुकानें हैं जहाँ कपड़ा और सिले-सिलाए कपड़े बिकते हैं। यह आपका ऐसा कपड़ा बाजार है जो आपको भारत में कहीं भी मिल जाएगा। इन दुकानों की गलियों में कभी भी दिन की रोशनी नहीं पहुँचती है। सब दुकानों में ट्यूब-लाइटें लगी हैं। छतों पर पंखे और फर्श पर लिनोलियम लगा है। बकार खान प्यारे जैसों की दुकान में सजावटी शोल्फ हैं जिनमें कमीजें ही कमीजें रखी हैं।

धारावी में कंगाली से शुरू कर अमीरी तक पहुँचने की एक और कहानी सुनिए। बकार ने उत्तर प्रदेश के बरेली जिले के एक गाँव में आठवीं तक पढ़ाई की थी। वह 1978 में तेरह साल की उम्र में बम्बई आया था। एक जमाने में उसके परिवार के पास जमीन जायदाद थी। पर उन्होंने जिन्दा रहने के लिए धीरे-धीरे जमीनें बेच दीं। माँ-बाप के अलावा घर में दो भाई और दो बहनें थीं। बकार सबसे बड़ा था। उसे बम्बई भेज दिया गया जहाँ वह धारावी में एक रिश्तेदार के घर में रुका।

बकार ने एक साल तक केलों की खरीद फरोख्त की। फिर उसे दादर स्टेशन के सामने सिले-सिलाए कपड़े बेचने का काम मिल गया। उसे दूसरे अनाधिकृत फेरीवालों की तरह नगर निगम के साथ हर रोज जूझना पड़ता। जैसे-तैसे उसने यह काम जारी रखा और कुछ पैसे बचा भी लिए।

बचाए धन के सहरे उसने दो मशीनें किराए पर ले लीं। उसने पाँच रुपए महीने पर एक कमरा किराए पर ले लिया था। खुशकिस्मती से उसे एक ऐसा ग्राहक मिल गया जो उसे लगातार काम दिलवाता था। उसे समझ में आ गया कि माल की माँग सदा बनी रहेगी। अब उसकी तीन दुकानें हैं, उसके यहाँ 12 कारीगर काम करते हैं। बकार की कमीजें पूरे भारत में बिकती हैं और एक साल में उसका व्यवसाय 70 लाख रुपए होता है।

खाना, शानदार - मनोहर खाना

आप कपड़ा इकाईयों को अटारियों में छिपा सकते हैं लेकिन खाने की गन्ध को छिपाया नहीं जा सकता है। जरा सोचिए कि आप धारावी की कूड़ा-करकट भरी गलियों से गुजर रहे हैं और घी की गन्ध आप पर हमला कर दे तो क्या होगा। डायमंड अपार्टमेंट्स में अब्दुल बकुआ सूचर बनाता है। उसकी बगल में ऊँचे-ऊँचे गेट हैं, उनके पीछे एक बड़े मैदान में फैक्ट्रीनुमा ढाँचा है।

यही वह जगह है जहाँ गुलाब जामुन, रसगुल्ले, चमचम, मोती चूर के लड्डू, काजू, बर्फी और बहुत सी भारतीय स्वादिष्ट मिठाइयाँ बनती हैं। अगली बार जब आप किसी पाँच सितारा होटल में नरम मीठा गुलाब जामुन खाएंगे तो सम्भवतः वह धारावी में बनाया गया होगा।

पंजाबी घसीटाराम हलवाई कराचीवाला इस जगह 1978 में आया था। इस जगह पर 1949 में बनी, डायमंड एयरेटिंग वर्क्स स्थित थी। यह एक सोडा बनाने की फैक्ट्री थी। घसीटाराम से पहले यह व्यापार गोवर्धन दास घसीटाराम बजाज चलाता था। वह पाकिस्तान बनने के बाद कराची से आया था। आजाद भारत में उसने मिठाइयाँ बनाने का काम जारी रखने का फैसला किया। कराची में उसका परिवार 1916 से यही काम करता था। 1978 तक उसके बेटे एक साथ थे। फिर अलग-अलग काम करने लगे। एक भाई की धारावी में एक फैक्ट्री है।

इस फैक्ट्री का प्रबन्धक मोहन कटरे इस परिवार के साथ 1951 से काम कर रहा है। वह हर काम बड़े गर्व से करता है। ये लोग 1951 से पहले कालबादेवी में एक छोटी सी मिठाई की दुकान चलाते थे। मोहन कटरे के अनुसार मिठाई बनाने की इनकी फैक्ट्री मुंबई में शायद भारत में सबसे बड़ी है।

फैक्ट्री ठीक वैसी ही है जैसी डायमंड एयरेटिंग वर्क्स के जमाने में थी। एक बहुत बड़े हाल में बहुत से कारीगर अलग किस्म के काम करते हैं। एक कोने में दूध

उबालने के लिए छह स्टेनलैस स्टील के बॉयलर हैं। दूसरी तरफ लोहे की कढाईयाँ हैं। इनमें दूध का खोया बनता है। इसका इस्तेमाल बंगाली मिठाईयों और गुलाब जामुन में होता है। फैक्टरी में हर रोज 2,000 लीटर भैंस का और 800 लीटर गाय का दूध इस्तेमाल होता है। यह दूध मुंबई के बाहरी हिस्से में स्थित वसई, दहीसर और तुर्भे से आता है।

इस व्यापार का सबसे दिलचस्प पक्ष यह है कि यहाँ काम करने वाले लोग भारत के अलग अलग हिस्सों से आते हैं। इस तरह बंगाली, चमचम और रसगुल्ले, पंजाबी, लड्डू और गुलाब जामुन महाराष्ट्रीयन काजू कतरी और बर्फी और उत्तर प्रदेश के भैया, खोया दूध से बनने वाली मिठाईयाँ, समोसे इत्यादि बनाते हैं। कटरे का कहना है कि यह ठीक भी है क्योंकि उन्हें ये चीजें बनाने के बारे में जानकारी होती है।

घसीटाराम की फैक्टरी में या ठीक उसके सामने ही लगभग 200 कारीगर काम करते हैं और वहीं रहते हैं। 1992-93 के दंगों में फैक्टरी के लोग इसलिए बच गए क्योंकि वे वहीं रहते थे। मालिकों ने पुलिस को तो खुश रखा ही। वह हर रोज 200 पुलिस कर्मियों को खाना खिलाते थे। इस तरह मिठाईयों की वैन को पुलिस सुरक्षा में दुकानों तक पहुंचाया जाता रहा।

इससे भी बड़ा व्यापार चिकी, चना, चकली और मैसूरू पाक का है। धारावी क्रॉस रोड़ के दोनों ओर इन चीजों को बेचने वाली दुकानें हैं। इन्हीं दुकानों के पिछवाड़े वह घर है जहाँ ये बनतीं और पैक होती हैं।

1992-93 तक यहाँ के निवासी अपनी पहचान भाषाई क्षेत्रों से करवाते थे-मद्रासी, यू. पी. वगैरह। 1992-93 के दंगों ने सब बदल दिया। लोगों की पहचानें हिंदू, मुसलमान, ईसाई आदि होने लगी।

अगर कोई अपवाद है तो वह हैं धारावी के चिकी बनाने वाले। सत्ताइस लोग चिकी बनाते हैं। इनमें से एक मुसलमान हैं हाजी शम्सुद्दीन। वे सबसे अधिक उम्र के हैं। सब लोग उन्हें पिता समान मानते हैं। किसी भी तरह की सलाह,

मदद चाहिए हो, घरेलू झगड़ों तक में, सब उन्हीं की बात मानते हैं।

धारावी में टनों के हिसाब से चिकी बनती है। यह पूरे शहर में और बाहर बेची जाती है। तिरुनेलवेली जिले का रामस्वामी, कामराज नगर में रहता है। यहाँ के सभी निवासी उसी के जिले से हैं। उसकी बेटी सेलवीपाड़ लिख कर चार्टर्टर्ड एकाऊंटेंट बनने की तैयारी में है। बेशक उसकी पत्नी सिर्फ तमिल बोलती है। वह अजनबियों से बात करने में घबराती है। एक ही पीढ़ी में अभूतपूर्व बदलाव आ चुका है - यह सब चिकी से हुए लाभ के परिणामस्वरूप हुआ है।

चिकी और मिठाई के अलावा औरतें पापड़ बनाती हुई देखी जा सकती हैं। इनमें से कुछ 'लिज्जत पापड़' को सप्लाई करती हैं। यह एक महिला संगठन है। इसका नाम है श्री महिला गृह उद्योग लिज्जत पापड़। इसकी शुरुआत कुछ महिलाओं ने मध्य बम्बई में 1959 में की थी। ऐसा उन्होंने थोड़े पैसे कमाने के ख्याल से किया था। अब पूरे भारत में इनके 40,000 सदस्य हैं। मुंबई में लिज्जत के 8,000 पंजीकृत सदस्य हैं। इसमें से पचास सदस्य धारावी में हैं। ये औरतें हर रोज बांद्रा जा कर पापड़ बनाने का गुंथा आटा लाती हैं। एक दो दिनों बाद यह तैयार किए गए पापड़ देने जाती हैं। इस काम के लिए उन्हें 50 से 60 रुपए प्रति दिन की अदायगी होती है।

बेशक, जितनी औरतें, पापड़ बेलती हुई दिखाई पड़ती हैं वे सभी लिज्जत उद्योग के लिए काम नहीं कर रही होती हैं। कई निजी उद्दिष्टों के लिए यह काम करती हैं और शायद उन्हें उतनी मजदूरी भी नहीं मिलती। उनके काम पर कोई निगरानी भी शायद नहीं रखता। नतीजा यह होता है कि कई बार बेले हुए पापड़ आपको कूड़े-कर्कट के ढेर के करीब टोकरों पर सुखाये हुए दिखाई पड़ जाते हैं, उन पर मक्खियाँ भी भिन्नभिन्नता रहती हैं। लिज्जत उद्योग के अधिकारों का दावा है कि उनके सदस्य स्वास्थ्य-नियमों का ध्यान रखते हैं और उनके कामों का बीच-बीच में निरीक्षण भी किया जाता है।

ब्रून, बटर और तनख्वाह

आधुनिक तरीकों ने धारावी में बन रहे खाने- पीने के सामानों को छुआ तक नहीं है। बेशक धारावी में गैस और बिजली की सुविधा उपलब्ध है। फिर भी वहाँ सब के सब नानबाई गत पचास सालों से ईंधन के लिए लकड़ी का ही इस्तेमाल कर रहे हैं। धारावी में सबसे बृद्ध नानबाई है, हाजी अब्दुल शकूर जमालुद्दीन। नगीना बेकरी के बाद 1952 में जमालुद्दीन ने मकदूमिया बेकरी स्थापित की थी। आज इस उम्र में भी वह दिन में दो बार अपनी बेकरी जाता है।

अगर आपको जमालुद्दीन की कहानी जानी -पहचानी लग रही है तो वह इसलिए कि यह कहानी औरों की कहानी से मिलती -जुलती है। जमालुद्दीन के पिता 1928 में उत्तर प्रदेश के बिजनौर जिले के मोहम्मदाबाद से बम्बई आए थे। उन्हें एक नानबाई के यहाँ नौकरी मिल गई थी। दस बरस बाद जमालुद्दीन बम्बई आ गया और स्कूल जाने लगा। 1952 में उसके पिता ने धारावी की आबू बकर चॉल में एक गोदाम खरीद कर मकदूमिया बेकरी स्थापित की। यहाँ दो भट्टियां हैं। इनमें डबलरोटी, बटर (इरानी नानबाईयों द्वारा बनाया जाने वाला बिस्कुट) टोस्ट (मीठा रस्क) और बन तैयार होते हैं। यहाँ हर रोज 270 किलोग्राम सामान बेक होता है।

धारावी मुख्य रोड पर मकदूमिया के पिछवाड़े मामू की बेकरी है। 45 वर्षीय अब्दुल अजीज खान को सब 'मामू' के नाम से जानते हैं। धारावी मुख्य रोड से थोड़ा हट कर मामू एक बड़े से मैदान का मालिक है। अगर उससे इस बारे में पूछा जाए तो वह इस जगह के मालिक होने से इन्कार करता है। वह खुद को एक किराएदार बताता है। एक मुसलमान महिला को वह मालिकिन बताता है। लेकिन दरअसल वह इस मैदान का मालिक है। इसके दो ओर रिहायशी फ्लैट हैं और दूसरी ओर बेकरी है।

धारावी में मामू की बेकरी के बारे में सब जानते हैं। जिस मैदान में यह बेकरी है, वहाँ पहले चर्मशोधन शाला होती थी। मामू पेशे से नानबाई नहीं है। उसने ईंधन बेच कर

उस जमाने में खूब पैसा कमाया जब अवैध देशी शराब जोर-शोर से बनती थी। सबसे ज्यादा भट्टियाँ धारावी में थीं। शराब की भट्टियों के अलावा बेकरियों को भी ईंधन की जरूरत रहती थी।

मामू का अनुमान है कि उन दिनों कम से कम 15-16 बड़ी और 50 छोटी भट्टियाँ थीं। बड़ी भट्टियाँ एक दिन में 100 ट्यूब शराब निकालती थीं। एक ट्यूब में पंद्रह लीटर शराब होती है। अनुमान है कि धारावी में एक दिन में 25,000 लीटर अवैध देशी शराब बनती थी।

जब पुलिस ने धारावी में इस धन्धे पर धावा बोला तब मामू ने अपना धन्धा बदल लिया। वह नानबाई बन गया। आज मामू की दो बड़ी भट्टियाँ हैं। उसकी बेकरी में रात को ब्रुन (सख्त पपड़ी वाला बन) और डबल रोटी बनती है। यह सुबह सवेरे अनेक रेस्तरां में सप्लाई हो जाती है। काम पर जाने से पहले लोग मुंबई का विशेष बनमस्का और चाय पी कर काम पर जाते हैं। मामू की बेकरी में दिन में 150 किलोग्राम खारी और 100 किलोग्राम बटर बिस्कुट बनते हैं।

मामू के ज्यादातर कारीगर आजमगढ़ जिले के हैं। सब दैनिक वेतन पाते हैं। इससे ज्यादा वेतन उन्हें मिलता है जो भट्टियाँ सुलगाते -संभालते हैं। उन्हें 80 रुपए प्रतिदिन दिया जाता है। इसलिए वे एक जगह टिक कर नौकरी नहीं करते हैं। आटा-मैदा गूंथने वाले भी कुशल कारीगर होते हैं। पैकिंग, सफाई आदि करने वालों की एक दिन की कमाई 25 रुपए होती है। यह काम औरतें भी करती हैं।

मामू की बेकरी में नजारा बेहद अतियथार्थवादी होता है। कारीगर ढाले पैजामे और बनियान पहने भट्टी में लकड़ी झोंकते - भरते नजर आते हैं। लम्बी पत्थर की बनी पट्टियों पर आटा-मैदा गूंथा जाता है। कमरे के दूसरे छोर में कुछ आदमी और औरतें ट्रेज पर चिकनाई लगा कर उनमें गूथी लोई-आटे को रखने की तैयारी करते नजर आते हैं। एक सामंजस्य से चुपचाप अपना- अपना काम करते हैं। जब आटे को ट्रेज में रख दिया जाता है तो दो आदमी लम्बी लोहे की

छंडियों से इन्हें भट्टी के अन्दर सरका देते हैं। उन्हें मालूम रहता है कि ट्रेज को कब बाहर निकालना है। ठंडे हो जाने पर ही बेक हो चुकी चीजों को पोलीथीन में पैक किया जाता है।

बेक हो चुके सामान को फेरी वाले अपने सिर पर बक्से रख कर ले जाते हैं या फिर साइकिल वाले अपने साइकिल पर बक्से बांध कर ले जाते हैं। ये लोग आम तौर पर उत्तर प्रदेश के होते हैं। कुछ दक्षिण के भी यही काम करते हैं। बेकरी के अपने फेरी वाले होते हैं। वे वहीं सोते हैं। वहीं खरीद और बिक्री का काम करते हैं।

1952 में जब जमालुद्दीन ने अपनी बेकरी खोली तो धारावी में सिर्फ दो ही बेकरियां थीं। अब इनकी गिनती बीस है। अधिकांश के पास दो ओवन हैं और सब ईंधन के लिए लकड़ी इस्तेमाल करते हैं। यहाँ सुबह सवेरे पूरा वातावरण धुएं से भर जाता है। बहुत लोग शिकायत करते हैं पर कोई सुनवाई नहीं है। धारावी निवासियों के लिए प्रदूषण नियंत्रण कोई मुद्दा नहीं है।

धुआँ और आग

मुकुन्द नगर में धुआँ और आग कमरों में रहती है। अगर कहीं नरक है तो यह धारावी की इन संकरी गलियों में मिल जाएगा। यहीं पर पुराने जमाने के ढलाई घर हैं। यहीं पर चमड़े की पेटियों और बैगों के लिए पीतल के बकल बनते हैं।

यहाँ किसी ने श्रमिक के लिए मानकीकरण या फिर काम से सेहत पर होने वाले बुरे असर के बारे में नहीं सुना है। इन इकाईयों की स्थापना औद्योगिक युग के शुरू में हुई थी। यहाँ अगर जरूरत है तो सिर्फ एक कमरा, एक गड्ढा, थोड़ा सा कोयला, थोड़ी से रेत, मोटर में डलने वाला तेल और ऐसे गरीब आदमी, जो अपने फेफड़े तबाह करने को तैयार हैं।

जिस गली से हम गुजर रहे हैं यह सिर्फ तीन फुट चौड़ी है। दोनों ओर कालिख से सने, अन्धेरे, 8 फुट \times 6 फुट के कमरे हैं। ये वे नरक-घर हैं जो बकल व्यापार का एक आन्तरिक हिस्सा हैं। जैसे ही आप कमरे में घुसते हैं आपको दिखाई देता है एक चौरस गड्ढा, जिसमें अंगारे

सुलग रहे हैं। उसके ऊपर लोहे की एक ग्रिल रखी रहती है जिस पर कोयला सुलग रहा होता है। गर्मी कोयले के ऊपर मिट्टी की हँडिया रखी होती है। इसी में रखे रहते हैं पीतल के टुकड़े। गर्मी से पीतल पिघल जाता है। कमरा धुएं से भर जाता है। इस धुएं के पीछे आपको चार आकृतियाँ नजर आएंगी। ये चार युवक हैं जो पिघले पीतल से मध्यकालीन युग में इस्तेमाल होने वाले तरीकों से बकल गढ़ेंगे। इनमें से अधिकांश उत्तर प्रदेश के हैं। वे सब कहते हैं कि जब तक और काम नहीं मिलता वह यही काम करते रहेंगे। उनमें से एक को भी नहीं लगता कि वह जीवन भर यही काम करना चाहते हैं।

पूरे कमरे में बीसियों साँचे, रेत और मोटर तेल से भरे डिब्बे पड़े हैं। हर बक्से में साँचे से बनाई गई छाप रखी है। इस तरह के कई साँचे कमरे की दिवार पर टंगे हैं। जब पीतल पिघल जाता है तो एक आदमी उसे साँचे में उडेल देता है। वह बक्सा बन्द कर देता है। कुछ सैकेण्ड के बाद वह उसे खोलता है और सभी बकलों की तमसे या पट्टी की मदद से बाहर निकालता है। हर एक बकल को वह ढीला कर के उन्हें एक ट्रे में फेंकता है। बकल अभी गरम हैं इसलिए उन्हें छुआ नहीं जाता है। जिस पट्टी पर बारह बकल टिके थे उसे बाहर निकाल कर पिघलाने के लिए आग में फेंक दिया जाता है।

बकलों से लदी ट्रे को सड़क पार बफोरिं इकाई में ले जाया जाता है। वहाँ तीन आदमी उन्हें नरम कपड़े से बफ यानि पॉलिश करते हैं। यह प्रक्रिया तब तक जारी रहती है जब तक बकल सोने की तरह चमकने नहीं लगते हैं। एक दिन में एक भट्टी से 1,200 या इससे भी ज्यादा बकल तैयार किए जा सकते हैं। तैयार माल को प्लॉस्टिक थैलियों में भर कर धनी (मालिक) के पास ले जाया जाता है। वह सड़क के अंतिम छोर पर इन्तजार कर रहा होता है।

यह धनी है इलियास भाई, उत्तर प्रदेश के मुरादाबाद का अन्सारी। यह अब पीतल का कार्यक्रमों बन गया है। बेशक मुरादाबाद पीतल के सामान के लिए मशहूर है पर

इलियास भाई का परिवार इस व्यापार में नहीं था। उसके लम्बे ऊँचे कद, सांवले रंग के कारण लोग उसे 'मद्रासी' समझ बैठते हैं। शायद इसलिए पड़ोसी उसे 'अण्णा' कह कर पुकारते हैं।

मुकुन्द नगर में स्थित इस अंधेरी और गन्दी गली में अनेक वर्कशाप हैं जहाँ बकल बनते हैं। उनको पॉलिश किया जाता है। यहाँ सिर्फ वे लोग रहते हैं जो इन इकाईयों में काम करते हैं। उनके चेहरे के हावभाव उनकी जिन्दगी की असली कहानी सुनाते हैं। अगर आप उनके जीवन में, काम में रुचि दर्शाते हैं तो बात करना चाहते हैं। बेशक इलियास भाई कहते हैं कि वह उनको 200 रुपए दैनिक वेतन देते हैं पर कारीगर कहते हैं कि चूंकि हमें महीने में सिर्फ पन्द्रह दिन काम मिलता है इसलिए हम एक महीने में 1,200 रुपए ही कमा पाते हैं।

जब वे बीमार हो जाते हैं तब क्या होता है? तुरन्त जवाब आता है 'धनी' हमारी देखभाल करता है। पर एक ही पल के बाद उनमें से कोई आगे बढ़ कर बुद्बुदाता है दीदी, अगर आप सच जानना चाहती है तो सुनिए, 'धनी' हमारे लिए कुछ नहीं करता। हमें सब खुद करना पड़ता है।

मारे डर के बोलते नहीं और इसी कारण वहाँ यूनियनबाजी नहीं हो पाती। अगर कोई किसी तरह की शिकायत करता है तो मालिक को दस और लड़के मिल जाएंगे। मुंबई में श्रमिकों की कोई कमी नहीं है। इसलिए अगर आपके पास काम है चुपचाप तब तक उसे करते रहो जब तक आपको कोई दूसरा काम नहीं मिल जाता है। इस तरह का रवैया कभी यूनियन नहीं बनने देगा और काम करने के हालात कभी नहीं सुधरेंगे।

ये कारीगर हर रोज जहर भरी सासें ले रहे हैं। क्या वे जानते हैं कि उनके शरीर में क्या जाता है? लोहा, ताँबा, जहर के ऑक्साइड इसके अलावा सुरमा, सीसा रंग, अरगजी, पारा, जिन्क संखिया के ऑक्साइड भी इनके शरीर में जाते हैं। एक युवा लड़के ने बताया हमें

खाँसी आती है तो हम मुँह में गुड रख लेते हैं। लेकिन उनके फेफड़ों का रंग क्या है? अगर वे यहाँ काम करते रहे तो वे कब तक जिन्दा रह पाएंगे? कोई नहीं जानता, किसी को परवाह नहीं।

धारावी में छिपी बकल संधानशाला या फाउंड्री खतरनाक उद्योगों का इकलौता उदाहरण नहीं है। वह नजरों से छिपी है। वे इसलिए फल-फूल रही हैं क्योंकि किसी को कोई एतराज नहीं है। इन मिठाई की दुकानों का पदार्फाश करने की कोशिश कुछ गैर-सरकारी संगठनों और संघों और यूनियनों ने की जरूर है पर कुछ हो नहीं सका है। आखिर जिनके लिए आवाज उठाई जा रही है वे ही लड़ने को तैयार नहीं तो और कोई क्या करेगा। वे जिन्दा हैं तो आज के लिए ताकि वे कल कोई विकल्प ढूँढ सकें।

हर चीज़ का पुनः आवर्तन-रीसाइकिंग

स्क्रेपयार्ड रहीखाने उतने ही नारकीय और अमानजनक हैं जिनी मुकुन्द नगर की संधानशालाएं - फाउंड्रियां। पर यहाँ कम से कम दिन की रोशनी तो नजर आती है। मुंबई में रही माल का दोबारा आवर्तन, करोड़ों का व्यापार है। धारावी की विशेषता है प्लास्टिक का दोबारा आवर्तन। एन.एस.डी.एफ. के सर्वेक्षण के मुताबिक धारावी में प्लास्टिक का दोबारा आवर्तन भारत में सबसे ज्यादा होता है। इस काम से 5,000 लोग जुड़े हैं। और 1986 में एक साल में 60 लाख रुपए का बारा न्यारा हुआ था। आज यह राशि कई गुना बढ़ चुकी होगी। धारावी से हर रोज कम से कम 3,000 प्लास्टिक के बोरे बाहर जाते हैं।

धारावी में यह काम 13वें कम्पाउंड नाम के क्षेत्र में होता है। यह जगह 60 फीट रोड और माहिम सायन लिंक रोड के मिलन स्थल पर स्थित है। सड़क पार मिठी नदी और माहिम खाड़ी है। यह ऐसा क्षेत्र है जिसे पर्यावरण की दृष्टि से सुरक्षित रखना जरूरी है। दरअसल यह एक कूड़े का देर डालने की जगह है। अगर आप कभी भी वहाँ साल के दौरान जाएँ तो आप देखेंगे कि वहाँ की दलदल

का एक हिस्सा खते में बदल चुका है। अगले छह महीनों में वहाँ द्युग्मियां बन चुकी होंगी। इस तरह धारावी उत्तर दिशा में थोड़ा और फैल चुका है। नए लोग इस दलदल में आ कर बस चुके हैं - ठीक ऐसे ही जैसे पाँच दशक पहले लोग यहाँ आ कर बस गए थे।

सनोला, जलील और बनवारी कंपाऊंडों से ही 13वां कम्पाऊंड बना है। ये एक ही दिन में दलदल से पैदा नहीं बने हैं। ये अहाते माहिम से बान्ड्रा जाने वाली रेल के पूर्व में बने हुए हैं। कई दशकों तक यह जगह सिर्फ मैदान थी। ये एक ऐसी जगह है जिसे औद्योगिक क्षेत्र या आवासीय क्षेत्र में विकसित किया जा सकता था। लेकिन ऐसा तब होता अगर अधिकारी सतर्क होते। 1986 में जब धारावी का विकास शुरू होने लगा था तब यहाँ भव्यंकर आग लग गई थी। एक नई शुरुआत के लिए यह एक मौका था। लेकिन और बहुत से मौकों की तरह भी छूट गया। इस क्षेत्र के लिए कुछ भी न किया गया और देखते ही देखते यहाँ कूड़े-करकट के दोबारा आवर्तन के लिए शेड बन गए। आज दोनों में एक बैचेन-सा गठबन्धन है। दोनों में से एक भी कुछ करना या बदलाव नहीं चाहता है।

मुझे सोनाला अहाते में यह वादा करके ले जाया गया कि मुझे दिखाया जाएगा कि मोटर ओयल कैसे परिष्कृत किया जाता है। इसके बाद उस तेल में से कोई बदबू नहीं आती। इस तेल को खाने के तेल में मिलाने के लिए बेच दिया जाता है। बेशक अगर सचमुच ऐसा किया जाता है तो कोई भी स्वीकार नहीं करेगा कि यह काम हो रहा है। इसके बदले मुझे जो दिखाया गया वह था प्लास्टिक, केमिकल इम जैसी चीजों का पुनः आवर्तन।

तेल के पुनः आवर्तन का काम धारावी में सबसे पहले आजमगढ़ जिले के निजामुद्दीन ने शुरू किया था। वह 1963 में मुंबई आया था। वह कहता है कि वह एक छोटा व्यापारी है। 13वें कम्पाऊंड में पन्द्रह और लोग यही काम करते हैं।

निजामुद्दीन हर महीने कमनियों और गराजों से चालीस-

पचास इम तेल खरीदता है। एक इम में 210 लीटर तेल होता है। यह वह मोटर आयल होता है जो बेकार हो चुका है। उसका काम है इन इमों को अपने पास रखना और बाद में थोड़े से लाभ पर इसे बेच देना। खरीदने वाला व्यापारी इसे फिर से छानता है। इसका उपयोग सड़कों पर तारकोली रोड़ी और अन्य कानूनी कामों के लिए किया जाता है। बेशक इसका इस्तेमाल कई गैर-कानूनी कामों के लिए भी होता है पर कोई भी इस बात को मानने के लिए तैयार नहीं है।

निजामुद्दीन के शेड से थोड़ी दूर एक बड़ा शेड है। यहाँ प्लास्टिक का दोबारा आवर्तन होता है। अहाते में 121 ऐसे शेड हैं और यह शेड उनमें से एक है। एक तरफ बेकार प्लास्टिक से भरे बोरे रखे हैं। आवर्तन करने वाले पुरुष और महिलाएं उकड़ होकर कूल्हों पर बैठे हैं। उनके सामने प्लास्टिक की चिलमचियां रखी हैं। बिना ऊपर देखे वे प्लास्टिक को अलग करते हैं और टूथ ब्रशों, टीका लगाने की सिरिंज और अन्य साबुत चीजों को दूसरी चिलमची में फेंकते जाते हैं। किसी ने भी दस्ताने नहीं पहन रखे हैं। किसी को भी नहीं मालूम कि खास तौर पर सिरिंजों का पुनः आवर्तन नहीं होना चाहिए। बिना इधर-उधर देखे, एक अन्ये की तरह वे बेकार सामान को अलग करते जाते हैं। रंगीन प्लास्टिक को एक मशीन में से निकाला जाता है। इस तरह प्लास्टिक के छोटे-छोटे टुकड़े हो जाते हैं। इन्हें बजन के हिसाब से प्लास्टिक निर्माताओं को बेच दिया जाता है। यह काम करने वालों को 40 से 45 रुपए प्रति दिन की अदायगी होती है। ये लोग ग्यारह घण्टे काम करते हैं।

शेड के बाहर जहाँ प्लास्टिक को अलग-अलग किया जाता है वहाँ बड़े-बड़े नीले रंग के इम रखे हैं। इन पर एक बहुराष्ट्रीय कम्पनी का नाम अंकित है। कम्पनियां इन इमों को बहुत कम पैसे दे कर मरम्मत करवाती हैं ताकि वे उन्हें दोबारा इस्तेमाल कर सकें। जिनकी हालत ज्यादा खराब होती है उनका दोबारा आवर्तन किया जाता है।

प्लास्टिक पुनः आवर्तन के व्यापार के बाद ड्रमों का पुनः आवर्तन बड़ा लाभदायक और बड़ा व्यापार है। यह काम 145 इकाईयां कर रही हैं। जो खतरनाक रसायन ड्रमों के अन्दर लगे रह जाते हैं, क्या उनसे कारीगरों की रक्षा की जाती है? यह वे प्रश्न हैं जो पूछे नहीं जाते हैं। इस व्यापार को चला रहे मालिकों को बेशक यह सबाल सूझते तक नहीं। सानोला आहाते में जो बहुराष्ट्रीय कम्पनियां यह काम करवाती हैं उन्हें क्या पड़ी है, चिन्ता करने की। आखिर उनका दावा है कि हम अपने कारीगरों का ख्याल रखते हैं। हमारे हाथ साफ हैं। उनकी फैक्टरी से बाहर अगर उनका कोई काम होता है तो वे जिम्मेदार नहीं हैं। मुंबई स्थित धारावी के सानोला आहाते में तीसरी दुनिया - पहली दुनिया की राजनीति का यह एक प्रदर्शन है।

13वें कम्पाऊँड में हर चीज़ का पुनः आवर्तन होता है – रुई, सूत के टुकड़े, खाली डिब्बे, खाली बोतलें और खाली ड्रम। 722 बड़ी और छोटी इकाईयों में से सिर्फ 359 के पास लाइसेंस हैं। शेष छोटे पैमाने पर अटारियों में काम करती हैं। एन.एस.डी.एफ. के सर्वेक्षण से हैरान करने वाली बात यह सामने आई कि यहाँ बाल मज़दूर काम नहीं करते हैं। पूरे धारावी में विशेष रूप से पुनः आवर्तन के काम में और पूरी मुंबई में बाल श्रमिकों से काम लेना आम बात है। यहाँ कारीगरों की उम्र इक्कीस और पचास साल के बीच थी। क्योंकि सब दैनिक वेतन पर काम करते हैं। यह हो सकता है कि हमारी जानकारी पूरी नहीं है।

जिस जमीन पर ये अहाते हैं उसका मालिक नगर निगम है। लगभग आधे गोदाम मालिकों के पास फोटो पास है (इन्हें वह पासपोर्ट कहते हैं) वे किराया अदा करते हैं। निजामुद्दीन कहता है कि मुझे उम्मीद है कि अन्ततः हमें काम करने के लिए बेहतर जगह मिलेगी। सच तो यह है कि अपने व्यापार का भविष्य कोई नहीं जानता है। हो सकता है कि जमीन की बढ़ती कीमतों के कारण हम से यह जगह छिन जाए। हो सकता है यहाँ मकान बन जाएं।

कुम्हार का चाक

बकल बनाने वालों और रद्दी बेचने वालों के मुकाबले कुम्हरों की हालत बेहतर है। कम से कम धारावी में उनके पास ज्यादा जगह है। उनका काम बाकी कामों के मुकाबले ज्यादा मुश्किल है और अन्ततः उनकी कमाई उतनी ज्यादा नहीं है।

राम जी भाई पीठामाई पटेल का जन्म धारावी के कुम्हार वाडा में हुआ था। उसकी छह पीढ़ियां बरसों से मुंबई निवासी हैं। वे जूनागढ़, वेरावल और ऊना से आए हैं।

धारावी में कुम्हारवाडा के कब्जे में साढ़े बारह एकड़ जमीन है। यह उस महत्वपूर्ण जगह पर है जहाँ 90 फीट रोड़, 60 फीट रोड़ से मिलती है। इस क्षेत्र में 250 कुम्हार काम करते हैं और इससे भी ज्यादा लोग यहाँ रहते हैं। इनके अलावा यहाँ कुछ मुसलमान और मराठी परिवार भी रहते हैं जो कुम्हार नहीं हैं।

आम तौर पर रामजी भाई के पास अपना काम रोक कर लोगों से बात करने का वक्त नहीं होता है। आज एकादशी है। आज के दिन कुम्हार चाक नहीं चलाते हैं। इसलिए रामजी भाई आराम फरमा रहे हैं। जिस कमरे में हमारी मुलाकात हुई वह उनकी रसोई और सोने का कमरा है। पालने में राम जी भाई का पोता लगातार रो रहा है और उसकी 66 वर्षीय बीबी मोती बाई चाय बना रही है।

उसके पुरखे बम्बई क्यों आए? रामजी भाई ने बताया ‘वहाँ काम नहीं था।’ पहले कुम्हारवाडा सेन्ट्रल बम्बई में चित्रा सिनेमा के सामने नायगांव में था। सरकार ने उन्हें हटा कर धारावी के उत्तर में सायन भेज दिया था। 1930 में वहाँ एक सैनिक कैम्प बन गया तो कुम्हरों को धारावी भेज दिया गया। 1932 में कुम्हरों की सब झोपड़ियां आग में जल कर राख हो गईं। वेलजी लक्खु सेठ ने हमारा हाल देखा और कुम्हरों ने कहा कि, “हमें घर मिल जाए तो हम बाकी सब कर लेंगे”।

रामजी भाई के अनुसार वेलजी लक्खु ने बिरला -टाटा

जैसे घरानों से दान स्वरूप इकट्ठे हुए धन से कुम्हारों को घर बनाने में मदद की। उसके पिता द्वारा बनाए इसी मकान में रामजी भाई का जन्म हुआ था। अब वह वहाँ अपनी पत्नी और चार बेटों और उनके दस बच्चों के साथ रहता है।

“जब मैं बड़ा हो रहा था तब यह एक खुला मैदान था। लोग धारावी आते हुए डरते थे। वे इसे जंगल समझते थे। यहाँ से माहिम स्टेशन नजर आता है। काठियावाड़ियों का हमारा संगठन था, सो हम काफी सुरक्षित महसूस करते थे। चालीस बरस पहले जब लोग यहाँ आ कर बसने लगे तो काफी कुछ बदल गया।”

धारावी के अन्य मकानों के मुकाबले रामजी भाई का घर बड़ा है। रामजी भाई ने बताया “हमें अपनी भट्टी और मटके बनाने के लिए जगह चाहिए। हम पिछवाड़े में एक जगह पर अनेक परिवार मिल कर आवाँ पर काम करते हैं”।

1932 में 319 कुम्हार परिवार थे आज 2,000 हैं। कुम्हारों की आबादी 1947 में तब बढ़ गई जब बहुत से कुम्हार जूनागढ़ छोड़ कर बम्बई आ गए। पहले से बम्बई में बसे हुए कुम्हारों ने नए-नए आए कुम्हारों को यहाँ बसने में मदद की।

इस समुदाय के लिए जिन्दगी कभी भी आसान न थी। रामजी भाई बताते हैं कि इनको सुबह सात बजे से रात सात बजे तक काम करना पड़ता है। पुराने जमाने में धारावी से थोड़ी ही दूर दादर में अपना बनाया सामान बेचने आते थे। लौटते बक्क, जितना भी सम्भव होता वह उतना अनाज वह घर ले जाता। इस तरह उन्हें अपनी दैनिक कर्माई के सहरे बसर करनी पड़ती थी। काम में पूरा परिवार मदद करता था।

आज हालात थोड़े बेहतर हैं। आज हम आवाँ जलाने के लिए मददगार रख सकते हैं। अब व्यापारी सीधे माल का आर्डर देते हैं और खुद ही उसे उठा लेते हैं। इसलिए हमें बिक्री की फिक्र नहीं करनी पड़ती। यही कारण है कि कुम्हारों

ने नमूने तक नहीं बदले हैं। कुछ एक को छोड़ कर लगभग सभी गमले और मटके ही बनाते हैं।

बेशक मददगारों की वजह से शारीरिक मेहनत कम करनी पड़ती है पर कच्चा माल मुश्किल से मिलता है। रामजी भाई ने बताया ”पुराने जमाने में मिट्टी खरीदने पार्ती और अन्धेरी जाते थे। अब हमें विरार और पालघर और उससे भी दूर जाना पड़ता है।

ये मुश्किलें तब बहुत कम लगती हैं जब हम उन मुसलमानों को देखते हैं जो कुम्हारवाड़ा का ही एक हिस्सा हैं। पीढ़ी दर पीढ़ी हिन्दू-मुसलमान मिलजुल कर साथ-साथ रहे हैं। 1992 में अयोध्या में घटी घटनाओं ने मुंबई शहर को आग के हवाले कर दिया था। पड़ोसी और दोस्त बंट गए। साझे व्यापार और रुचियों के चलते सब ठीक था पर दंगों के बाद सब कुछ छिन्न-भिन्न हो गया।

रामजी भाई के घर से कुछ ही दूरीपर 55 वर्षीय इस्माइल खामीसिया रहते हैं। वहाँ रह रहे 40 मुसलमान कुम्हारों में से वे एक हैं। ये सब कच्छ के हैं और कच्छी भाषा बोलते हैं। शेष सब हिन्दू हैं वे उत्तर गुजरात के हैं और गुजराती बोलते हैं। इस्माइल भाई रतादिया गाँव के हैं पर उन्हें कच्छ के बारे में ज्यादा मालूम नहीं है। वे यहीं पैदा हुए थे, बड़े हुए और कुम्हारवाड़ा में ही काम करते हैं।

इस्माइल भाई किसी से मिलते जुलते नहीं हैं। उनका दिल टूट चुका है बस अपना काम करते हैं। दंगों ने कुम्हारवाड़ा को बुरी तरह से बदल डाला। दंगों के दौरान पुलिस की गोली बारी में उनके एक मेहमान मित्र को गोली से उड़ा दिया गया था।

इस्माइल भाई के दादा कच्छ से बम्बई बरसों पहले आ गए थे। माटुंगा में ये चार-पांच परिवार थे पर सरकार ने उन्हें कुम्हारवाड़ा भेज दिया। इस्माइल भाई तब से यहाँ रहते हैं। एक बेटा कॉलेज में पढ़ रहा है, दूसरा बेटा उनकी मदद करता है। उनकी दोनों बेटियां व्याही जा चुकी हैं। उनके दो भाई बगल वाले मकान में रहते हैं।

इस्माइल भाई और उनका बेटा सुबह चार घण्टे में 100 बड़े गमले बना लेते हैं। एक व्यापारी इन्हें तय हो चुकी कीमत पर खरीद लेता है। इस्माइल भाई बिक्री के झंझट में नहीं पड़ते हैं। वे मानते हैं कि अगर प्रशिक्षण मिल जाए तो उनकी कमाई बढ़ सकती है। धारावी का कुम्हार समुदाय गरीब है।

सोने की गलियां

धारावी मुख्य मार्ग पर कोलीवाड़ा के पास धारावी की सबसे पुरानी चॉल है। सकीना बाई चॉल। इसकी संकरी गलियां सोने से - परिष्कृत सोने से - रेखित हैं। बाहरी दुनिया की नजरों से दूर यहां सोने को परिष्कृत, पॉलिश करके गहने बनाए जाते हैं। एक छोटे-से कमरे में चार आदमी यह काम करते हैं। यह चारों सांगली जिले के हैं। इस वक्त उनके पास कोई काम नहीं है। कमरे में कोयले की अंगीठी रखी है जिसके ऊपर चिमनी है। इसके एक तरफ मशीनी धौकनी लगी है। एल्यूम्युनियम से बनी चिमनी कमरे के एक तरफ से होती हुई ऊपर तक जाती है। कमरे में धुआँ नहीं आता। धारावी में पर्यावरण का सम्मान करती काम करने की जगह देख कर हैरानी हुई। मुकन्द नगर की संधानशाला से कितनी भिन्न स्थिति है। उन लोगों ने बताया कि सोने को मिट्टी के बर्तनों में रखा जाता है। फिर उन्हें आग पर रखा जाता है। जब सोना पिघल जाता है तो उसे एक डले की शक्ल दे दी जाती है। फिर उसे तोला जाता है। इसे सुनारों को बजन के हिसाब से बेचा जाता है। इस तरह से पिघलाया गया सोना पुराने गहनों का होता है। लोग इसे ऋण उतारने या फिर नए गहने खरीदने के लिए इस्तेमाल करते हैं।

सड़क के उस पार तीन लड़के बैठे हैं। वे तीनों बंगाल के हैं और गहने बनाते हैं। वे लकड़ी के मेजों के सामने जमीन पर बैठे हैं। उनके नेता दिलीप की उम्र बीस साल के आस पास है। वह अपने मुँह से एक पाइप में फूँकें मार रहा है। कोयले पर एक तराशा हुआ लकड़ी का बर्तन रखा है। वह सोने के छोटे-छोटे टुकड़ों को पिघला रहा है। पिघल जाने के बाद सोने को एक साँचे में उड़ेल दिया जाएगा। बहुत जल्दी ही

दिलीप एक और गहना तैयार कर लेगा। वह हमें बहुत ही जटिल नमूने के कर्पफूल दिखाता है। इसको उसने अभी-अभी बनाया है। वे लोग मालाएं, पैन्डेन्ट और अंगूठियां बनाते हैं। दिलीप द्वारा बनाए गए गहने सकीनाबाई चाल में भेजे जाएंगे। इन्हें तंजावूर के टोडी या उत्तर आरकट के पीर मुहम्मद पॉलिश करेंगे। वे यहीं बहुत संकरी जगह पर काम करते हैं और ऊपर अटारी में ही रहते हैं।

सोने के गहनों को हाथ से ही पॉलिश किया जाता है। एक प्लॉस्टिक की चिलमची में पानी और रीठे का घोल बनाया जाता है। उसी में गहनों को भिगो दिया जाता है। ब्रश से उनकी सफाई की जाती है। बिना दस्ताने पहने गहनों को पोटेशियम साइनाइड के घोल में भिगो देते हैं। जब मैंने कहा कि यह तो खतरनाक है तो उन लोगों ने कहा कि आप ठीक कह रही हैं पर हमें इतनी आदत पड़ गई है कि हम इस बारे में सोचते भी नहीं।

इन्हीं कमरों के ठीक बाहर मुख्य सड़क पर बहुत सी दुकानें हैं। यहाँ गहने बिकते हैं। हालांकि दुकानों के मालिक गुजराती हैं पर गहनों के नमूने तमिलनाडू के लोगों की पसन्द के रहते हैं। व्यापार एक ही चीज़ का है पर कारीगर महाराष्ट्र, गुजरात, बंगाल और तमिलनाडू से हैं। यहाँ हिन्दू और मुसलमान काम करते हैं। दिलचस्प बात यह है कि दंगों के दौरान सकीना बाई चॉल में मुसलमान परिवारों को हिन्दुओं ने दंगाईयों से बचाया था।

नए उद्योग, नए रंगरूट

धारावी में प्रत्याशित और अप्रत्याशित सब कुछ बनता है। इसलिए कोई हैरानी नहीं कि यहाँ बेकरी है तो गमले भी बनते हैं। पर साबुन? धारावी में तीन या चार इकाइयों में साबुन बनता है जो यहीं बिकता है। एक साबुन बनाने वाला है अरुमै नायकाम। वह हिन्दुस्तान लीवर कम्पनी की साबुन फैक्टरी में नौकरी करता था। यह नौकरी उसे 1979 में तब मिली जब वहीं से उसके पिता सेवानिवृत्त हुए थे। 1989 में जब कम्पनी ने ताले लगाने का फैसला कर लिया तो नायकाम

ने अपना लघु उद्योग शुरू करने का फैसला कर लिया।

आज वह एक दिन में दो टन कपड़े धोने का साबुन तैयार करता है। बाजार में यह साबुन राधा, ज़ामा और सोफिल नामों से बिकता है। देखने में इसके साबुन की शक्लों सूरत हिन्दुस्तान लीवर और दूसरी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा बेचे जा रहे साबुन जैसी है। उनके मुकाबले कीमत चौथाई से भी कम है। धारावी में नायकाम के साबुन की बिक्री पक्की है।

उसकी फैक्टरी में कारीगर दैनिक वेतन पर काम करते हैं। एक दर्जन आदमी एक छोटे से कमरे में रखी एक-दो मशीनों पर साबुन बनाते हैं। महिलाएं इहें पैक करती हैं। बड़ी दिलचस्प बात है कि हिन्दुस्तान लीवर में ताले लग जाने के बाद बेरोजगार हुए लोगों ने साबुन बनाना शुरू कर दिया था। साबुन का नाम ही लॉक आउट रखा गया था। तालाबन्दी का विरोध करने के अलावा इस तरह यूनियन के लिए धन भी इकट्ठा किया गया था।

धारावी में बना कपड़े धोने का साबुन नायकम के साबुन की तरह वहीं बिक जाता है। धारावी में बना साबुन बहुराष्ट्रीय कम्पनियों में बने साबुन से सस्ता होने के नाते आसानी से बिक जाता है।

जब- जब, नए-नए प्रवासी धारावी आकर बस जाते हैं तब तब वहाँ एक नया व्यापार भी शुरू हो जाता है। धारावी में नए उद्यमी बिहारी हैं। कोई नया सर्वेक्षण नहीं हुआ इसलिए किसी को इनकी संख्या नहीं मालूम है। पर 1986 में एन.एस.डी.एफ. के सर्वेक्षण के मुताबिक धारावी में 6 बिहारी थे। जाहिर है इनकी गिनती अब इससे कहीं ज्यादा है। वह हर व्यापार- हर उद्योग में छाए हुए हैं। यह खास तौर से चमड़े के तैयार सामान में सक्रिय हैं। इनके प्रति सबसे ज्यादा नाराजगी है इस उद्योग से जुड़े पुराने महाराष्ट्रावासियों को। एक कारीगर ने बताया “यह बिहारी लोग आधे वेतन पर काम करते हैं। जाहिर है हम बेरोजगार हो जाते हैं।”

अब्दुल मलिक बिहार के चंपारन जिले का है। वह रोजी- रोटी के लिए चालीस बरस पहले धारावी आया था।

यह वयोवृद्ध सफेद बालों और दाढ़ी वाला आदमी अपनी ही दुकान में पेटियां, जिप, हैंडल और सूटकेस बेचता है। ये चीजें वह अपने घर में बनाता है। इसकी दुकान में सूटकेसों की मरम्मत भी होती है।

वह बताता है “हमारे गाँव में बम्बई का नाम ही हैरानी का विषय था।” बम्बई आ कर पहले मलिक ने तरह तरह के काम किए। 1996 में उसने पेटियां, सूटकेस और बैग बनाने शुरू किए।

अब्दुल मलिक के घर पर ही बिहारी कारीगर पेटियां बनाते हैं। एक आदमी एक दिन में एक सौ घटिया और पच्चीस बढ़िया पेटियां बना सकता है। ज्यादातर कारीगर यहीं सोते हैं। उनका खाना एक ‘बिस्सी’ से आता है। दो वर्क के खाने के लिए एक आदमी 550 रुपए महीना अदा करता है।

अब्दुल मलिक ने बताया कि दंगों के कारण बहुत से बिहारी भाग गए थे। हालात ठीक हो जाने पर वे लौट आए थे और अपने साथ और बिहारियों को लाए थे। इनमें से ज्यादातर जवान लड़के हैं। कोई नहीं जानता कि धारावी में कितने बिहारी हैं। एक अनुमान के मुताबिक धारावी में 15,000 बिहारी लड़के अलग-अलग इकाईयों में काम कर रहे हैं। मालिक मानता है कि उनका नाम मतदाताओं की सूची में नहीं है। सो सरकारी स्तर पर वे हैं ही नहीं।

अनुमान है कि ऐसे भी लड़के हैं जो 500 रुपए सालाना पर काम करने को तैयार हैं। वे यह पैसा घर भेजते हैं। उनको खाना, रहने की जगह देने के अलावा काम सिखाया जाता है। दो साल के बाद वे अपना काम शुरू करने लायक हो जाते हैं।

क्या कोई भविष्य है?

बावजूद इतने सारे उद्योगों-धर्वाओं के धारावी को मूल रूप से रिहायशी जगह माना जाता है। लोग यहाँ इसीलिए रहते हैं क्योंकि यहाँ काम मिलता है। एन.एस.डी.एफ. आर धारावी विकास समिति ने बहुत जोर डाल कर स्पष्ट कहा है

कि धारावी एक औद्योगिक क्षेत्र है। सरकार कुछ भी सुनने-करने को तैयार नहीं है।

इसका एक कारण था मुंबई विकास योजना जिसके तहत न सिर्फ उद्योगों को शहर से बाहर भेजने का विचार था साथ ही नए उद्योगों को शहर में स्थापित होने की अनुमति न देने का भी प्रावधान था।

डी.टी. जोसफ के अनुसार क्योंकि रोजगार के लिए कोई योजना नहीं बनाई गई। इसिलिए मुंबई के विकास में आई बाधा का यह एक मुख्य कारण है। मेरे विचार में शहरी इलाकों में रोजगार ही मुख्य मुद्दा होना चाहिए। शहरीकरण का संदर्भ क्या है? आप इतिहास में लौट कर देखिए शहरीकरण का मुख्य कारण है कि लोग ग्रामीण क्षेत्र छोड़ कर शहर आ जाते हैं। सबसे जरूरी है कि शुरुआत रोजगार से की जाए। आप कोई शहरी नीतियाँ देख लें। रोजगार पर एक भी शब्द नहीं मिलेगा।

शहरी योजना पर बरसों काम कर चुके जोसफ अंत में कहते हैं कि मुंबई की योजना बनाने का नजरिया ही एकदम गलत था। इस द्वीप शहर के संदर्भ में यह नजरिया विशिष्ट वर्ग के लिए था। लोगों की जरूरत पर ध्यान ही नहीं दिया गया। वे कहते हैं ‘‘मेरे विचार में द्वार्गी झोपड़ी क्षेत्र के पुनः विकास के लिए उनकी मौजूदा हालत को बेहतर बनाना चाहिए। धारावी में अगर लोग निर्यात कर रहे हैं, उद्योग लगा रहे हैं, अच्छा कमा रहे हैं तो इसका मतलब है कि वे पेशेवर लोग हैं। इनके पेशे में किस जगह, कैसी सुविधाएं चाहिए? आपके नियम ऐसे होने चाहिए कि वे खुद ब खुद धारावी से बाहर निकल कर अपने हालात सुधारें’’।

भारत शहरी योजना के मामले में आज भी उपनिवेशी विचारधारा में फंसा-टटका है। आज की वास्तविकता के संदर्भ में यह सही नहीं है। आप स्कूलों, दवाखानों के लिए हरे भरे बाग-बगीचे बनाते हैं। लेकिन आप गरीबों के लिए न तो घर बनाते हैं न ही उनके रोजगार के बारे में सोचते हैं। अगर आप फैक्टरियों को दूसरी जगह भेज देते हैं तो आप किसी

एक जगह पर रहने बसने का हक छीन रहे हैं। इस तरह शहर ऐसे अलग-थलग हो जाएगा कि समृद्ध संपन्न लोग ही सुविधाओं का लाभ उठा पाएंगे। गरीब तबका दलदल में फंस कर ऐसी जगहों पर रहने को मजबूर हो जाएगा जो और किसी के काम की नहीं।

फिर भी औद्योगिक धारावी में लोग समृद्ध संपन्न हो गए हैं। यह खूब फला-फूला है। गैर-कानूनी उद्योगों से राज्य का वास्तविक लाभ हुआ है। बेशक बहुत से व्यापार ऐसे हैं जो टैक्सों-करों से बच निकलते हैं। ऐसा काम के स्वरूप के कारण सम्भव होता है। अपना काम जारी रखने के लिए वे बहुत से अप्रत्यक्ष कर अदा करते हैं। उदाहरण के लिए उन्हें पुलिस, नगर निगम और स्थानीय दादा को हफ्ता देना होता है। अगर इन उद्यमों को नियमित कर दें तो इनके फालतू के खर्चें बच जाएंगे।

दरअसल मुंबई में पटरियों पर बैठे फेरीवाले तरह-तरह की चीजें बेचते हैं। बहुत से लोगों को इनसे सामान खरीदना सुविधाजनक लगता है। उन्हें जरूरी सामान घर के आसपास सस्ते में मिल जाता है। नगर निगम बहुत कम को लाइसेंस देता है। बाकी सबको गैर-कानूनी माना जाता है। उन्हें हर समय निगम की गाड़ियों का डर सालता रहता है। वे उनका सारा सामान उठा कर ले जाते हैं और उन पर भारी जुर्माना भी लगा देते हैं।

इसके अलावा वे और नगर निगम के कर्मचारियों को हफ्ता देते हैं। अनेक फेरीवालों के संगठन मांग करते रहते हैं कि उन्हें लाइसेंस दिए जाएं और उनके क्षेत्र भी बांट दिए जाएं। लेकिन कुछ भी नहीं हुआ। बस गैर-कानूनी और कानूनी दोनों फेरीवाले मुंबई में पटरियों पर जमे हैं। कुछ भी नहीं बदलता।

कानून को एक बार नजर-अन्दाज करके - जरा सोचिए - इस तरह का अनियंत्रित उद्यम और क्षमता बरबाद होती है। इस तरह तो वे अपने ही फालतूपन की कहानी लिख रहे हैं। उदाहरण के लिए चमड़े से बने सामान को ही देखिए। जब

तक आप इस क्षेत्र में अंतर्राष्ट्रीय स्तर की क्षमता हासिल नहीं कर लेते किसी भी तरह की कला-कुशलता हो आप निर्यात बाजार में पांच नहीं जमा सकते हैं। धारावी में बने चमड़े के सामान के संदर्भ में यह साफ नजर आ रहा है। अपनी लगाई गई पूँजी को वापस लाने के लिए वे अपना सामान लागत-कीमत पर बेच रहे हैं। इनमें से अधिकांश निर्यात बाजार के स्तर तक नहीं पहुंच पा रहे हैं। गहने रखने के डिब्बों की तरही बाजार में बड़ी संख्या में बिकने वाले सामान की गुणवत्ता स्तरीय नहीं है।

इसी तरह सिले - सिलाएँ कपड़े बेचने वाले स्थानीय बाजारों की जरूरतों को पूरा कर रहे हैं। इतने ज्यादा कारीगर यह काम करते हैं कि पश्चिम के बाजारों के लिए गुणवत्ता का स्तर बनाए रखना असंभव है। परिणामस्वरूप जो भी निर्यात होता है वह खाड़ी देशों तक ही सीमित है। यहाँ मांग बहुत कम है। बाकी का कपड़ा उद्योग कमीजें बेचता है। यह न सिर्फ मुंबई में बल्कि पूरे देश के छोटे शहरों में बिकती हैं।

जिन न्यूनतम हाशिएँ पर यह उद्योग काम करते हैं उसके चलते कुशल कारीगरों की जगह कम वेतन पर काम करने को तैयार अकुशल कारीगर काम करने लगते हैं। उदाहरण के लिए चमड़े के उद्योग में पीढ़ी-दर-पीढ़ी काम करने वाले महाराष्ट्र के कारीगर अब इस क्षेत्र में नहीं हैं। वे कटुता भरे

स्वर में बिहारी युवकों की शिकायत करते हुए बताते हैं कि वे आधे वेतन पर काम करते हैं। उनकी कुशलता भी आधे से कम है। फिर भी नए कारीगर बहुत जल्दी काम सीख लेते हैं। इस तरह व्यापार की शक्लों-सूरत भी एक हृद तक बेकार-सी हो जाती है। औपचारिक क्षेत्र में भी कारीगरों की नौकरियां जा रही हैं। इनके पास कोई विकल्प नहीं होता है।

सरकार के पास एक विकल्प यह है कि धारावी को औद्योगिक क्षेत्र की मान्यता देकर कुछ इकाईयों को लघु उद्योग घोषित कर दे। या फिर सरकार इन्हें गैर-कानूनी मान ले। लेकिन इन्हें रोकने या बन्द करने के लिए कोई कदम न उठाए। अगर सरकार दूसरा रास्ता अपनाती है तो धारावी पहले की तरह गंदगी और भीड़-भाड़ भरे हालात में काम करता रहेगा। भविष्य में सुरक्षा का सवाल ही नहीं उठता है।

अगर क्षेत्र को लघु उद्योग क्षेत्र की मान्यता मिल भी जाती है तो वर्तमान व्यापारियों को अपनी तकनीक को उच्च स्तरीय बनाने के लिए पूँजी निवेश तो करना ही होगा। जब तक तकनीक और कुशलता को उच्च स्तरीय नहीं बनाते तब तक वह कानूनी तौर पर जीवित नहीं रह सकेंगे या तो वे ऊपर जाएंगे या बाहर। चुनाव उन्हें ही करना होगा।

अनुवादक : सरोज वशिष्ठ



